TO THE READER.

KINDLY use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a new copy or paid for. In case the book be a volume of set of which single volumes are not available the price of the whole set will be realized.

C. L. 29.

SRI PRATAP COLLEGE

LIBRARY

Class No. 891.433

Book No. M 21 N

Acc. No. 11958

सरस्वती-सिरीज़ नं० ६४

निष्कलंकिनी

Nishkalankini
T:

महावीरप्रसाद गहमरी

Mahāvir Prasad Gahmiri

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, व्यौहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि

आधुनिक उपन्यास

निष्कलंकिनी

विपत्ति में पड़ी एक सती नारी का सजीव चित्रण।

महावीरप्रसाद गहमरी

Printed and published by K. Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad.

No.
11958

क

उस बार के चन्द्रग्रहण पर काशी-स्नान का फल शीतल उपाध्याय हाथों हाथ पा गये। ग्रहण का स्नान ऐसा अव्यर्थ फलदायक है, इसको प्रत्यक्ष देखकर उपाध्यायजी दोनों हाथों से छाती पीटते हुए काशी से घर लौट आये।

बात यह हुई कि उस बार ग्रहण में नहाने जाकर शीतल पंडित अपनी विवाहिता युवती रूपवती पुत्री सरस्वती को काशीजी में ही छोड़ आये। उनकी स्त्री के साथ इस पर्व पर पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से उनके गाँव की और बहुत सी स्त्रियाँ भी आई थीं। स्नान के बाद एक-दूसरे का कन्धा पकड़कर भीड़ में चलते-चलते वे लोग एक जगह आकर रुक गये। वह चौमुहानी थी। वहाँ बेतरह भीड़ जमा हो रही थी। एक अँगरेज़ पादरी वहाँ पर हिन्दी में लेक्चर दे रहा था। उस पादरी को घेरकर इतने आदमी खड़े थे कि उनके बीच से रास्ता करके बाहर निकलना बिलकुल असम्भव था। सभी खड़े होकर तमाशा देख रहे थे। कोई साहब के मुँह से तकार के स्थान पर टकारवाली हिन्दी सुनकर हँस रहा था और कोई उसकी दलील सुनकर ही चकित हो रहा था।

शीतल पंडित औरतों के आगे-आगे, रास्ता साफ़ करते हुए, चल रहे थे और बीच-बीच में पीछे फिरकर उनको सावधान भी कर देते थे। इस जगह आकर उन्होंने पीछे फिरकर ज़ोर से कहा—ख़ूब सावधान होकर एक दूसरे का हाथ पकड़े रहो।

इसी समय एक आदमी ने अचानक एक थप्पड़ मारकर पादरी के सिर की टोपी गिरा दी। साथ ही और कुछ लड़के उस पादरी के दल पर जा टूटे। इसके बाद दोनों दलों में हाथा-पाई और लात-जूता शुरू

हो गया। भीड़ में कौन कहाँ जा पड़ा, इसका कुछ ठिकाना न रहा। शीतल पंडित अपने को सँभालते-सँभालते क़रीब सौ क़दम दूर जा पड़े। पास ही घोड़े पर सवार एक पुलिसमैन रास्ते पर मूर्ति की तरह खड़ा था। मार-पीट होते देखकर वह घोड़े पर चढ़ा इस भीड़ में आ गया। इससे लोग जिधर-तिधर भागने लगे। बड़ा होहल्ला मच गया मगर पाँच-सात मिनट बाद वहाँ का शोर-ग़ुल मिट गया और भीड़ छँट गई।

शीतल पंडित ने फिर स्त्रियों को बटोरकर कहा—इधर से आओ। उनकी पत्नी ने धीरे से पति को पुकारकर कहा—अजी सरस्वती कहाँ है! वह तो दिखाई नहीं दे रही है।

"क्या आफ़त है! वह कहाँ गई! तभी से कह रहा हूँ कि सब लोग सावधान होकर चलो।"

वे ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगे—"सरस्वती! सरस्वती! कहाँ गई सरस्वती"! उस हंगामे में कौन किसकी सुनता है।

तब शीतल पंडित स्त्रियों को एक तरफ़ खड़ा करके उस विशाल जन-समुद्र को हाथ से ठेलते हुए चिल्लाहट के साथ घूमने लगे। जाँघिया और हाफ़ कमीज़ पहने स्वयंसेवक लोग भीड़ को सँभाल रहे थे। उनमें से एक को साथ लेकर वे सरस्वती को ढूँढ़ने लगे। लेकिन दो घण्टे तक चिल्लाने पर भी जब सरस्वती का कुछ पता न लगा, तब वे स्त्रियों को ठिकाने पर पहुँचाकर पुलिस में ख़बर देने गये।

कई दिनों तक पुलिस, शीतल और स्वयंसेवकों के दल ने काशी नगरी को छान डाला, किन्तु सरस्वती का कहीं पता नहीं लगा। सारांश यह कि काशी की गलियों में इस तरह जवान लड़की के लापता हो जाने पर पिता जो किया करता है, वह सभी हुआ मगर सब व्यर्थ। शीतल के साथ जो लोग पुण्य लूटने काशी आये थे, उनको लेकर वे गाँव को लौट गये।

आरा ज़िले के एक गाँव में शीतल उपाध्याय का घर है। अपने गाँव में उनकी ख़ूब प्रतिष्ठा है। आदमी सीधा-सादा मगर बड़ा क्रोधी

है। मन में जो आवे उसे उसी समय बक देने की कुटेव पड़ गई है। पंडितजी सँभलकर, लुका-छिपाकर बात नहीं कर सकते। कई धनी घर उनके यजमान हैं। यजमानी न करने पर भी उनके जीवन-निर्वाह का दूसरा उपाय था। उनके बाप-दादे यही काम करके बहुत धन कमा गये थे। नक़द रुपये के सिवा उनके माफ़ी की ज़मीन भी बहुत थी; इसी से उनकी जीविका मज़े में चली जाती थी। शास्त्र-अध्ययन और तरह-तरह के क्रिया-कर्म में शीतल उपाध्याय का मन बहुत लगता था। उस गाँव में ब्राह्मणों के और कई घर हैं, मगर वे लोग शीतल पंडित की तरह सम्पन्न नहीं हैं। दुःख-संकट में कितने ही आदमी शीतल पंडित से सहायता पाते थे, इससे गाँव में उनका साथ देनेवालों की कमी नहीं थी। गाँव की शाम की बैठक उपाध्यायजी के चबूतरे पर ही रोज़ नियम से होती थी। सीधे-सादे शीतल पंडित ने रोते-रोते सरस्वती के खो जाने का हाल सबसे खोलकर कह दिया। मगर उनको मालूम हुआ कि सरस्वती की बात वहाँ कहने की कोई ज़रूरत नहीं थी; क्योंकि सभी इस घटना को जानते हैं। सिर्फ़ इतना ही नहीं, पंडितजी जितना जानते हैं उससे कहीं अधिक वहाँ के लोग जानते हैं। घर के अन्दर जाकर शीतल ने पत्नी से कहा—इसके बदले अगर लड़की को यमराज के सपुर्द कर आता तो मुझे अधिक सन्तोष होता।

पंडिताइन के मुँह से कोई बात न निकली। पास ही पास मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए दो रोगियों में से एक के मृत्यु-कष्ट से कराह उठने पर दूसरा रोगी जिस तरह उसकी ओर देखता है, उसी तरह पंडिताइन ने एक बार पति की ओर देखा और फिर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। पति के शोक में समवेदना की कोई बात उनके मुँह से नहीं निकली। कैसे क्या हो गया, यह बात उनकी समझ में ही नहीं आती थी। कई वर्ष पहले ब्याह के तीसरे दिन ससुराल जाते समय सरस्वती ने रोकर कहा था—मा, मैं तुझे छोड़कर कैसे रहूँगी। काशी की उस विराट् भीड़ में से मानों रुलाई का वही परिचित स्वर उनके कानों में आने लगा।

दस वर्ष पहले इस गाँव के एक परिवार में कोई घृणित घटना हो गई थी, उसको लेकर सारे गाँव में दो-तीन वर्ष ख़ूब हलचल रही और दलबन्दी भी थी। इस सम्बन्ध में दो-एक मामले अदालत तक गये थे। इसके बाद इधर कई वर्षों से किसी प्रकार की सनसनीदार वारदात न होने से गाँव की छोटी-बड़ी सभी जातियों में कुछ सन्नाटा सा छाया हुआ था। सरस्वती के लापता होने के कई दिन बाद से ही ग्रामवासियों में अचानक ख़ासा उत्साह आ गया। उनकी निर्जीव जीभ बहुत दिनों के बाद एक नये रस का स्वाद पाकर सजीव हो गई।

अब उपाध्यायजी के चबूतरे पर लोगों का वैसा जमाव नहीं होता। यहाँ का अड्डा धीरे धीरे टूटकर अन्यत्र चला गया। सरस्वती के सम्बन्ध में रोज़ नई नई बातें उठने लगीं। अन्त में एक दिन मालूम हुआ कि रघुराजसिंह के पुत्र धनराज ने सरस्वती को कहीं छिपा रक्खा है। धनराज काशी के कालेज में पढ़ता है। शायद पहले से ही उसके साथ सरस्वती की सब बात तय हो गई थी। सिर्फ़ इतने दिन मौक़ा न मिलने से वे भाग नहीं सके थे। बहुत दिन पहले से सरस्वती के साथ धनराज का प्रेम था। बहुतों ने यह भी देखा है कि उनमें लुक-छिपकर बातचीत होती थी। मगर रघुराजसिंह के लड़के के बारे में मुँह खोलकर कुछ कहने की हिम्मत इतने दिन तक किसी को न हुई और यह भी किसी ने नहीं समझा था कि मामला इतनी दूर तक चला जायगा। लेकिन जब इतना हो गया तब चुप रहना उचित नहीं जान पड़ता। इसी से दमड़ी तिवारी ने एक दिन शाम को पन्द्रह-बीस आदमियों के सामने यह बात खोलकर कह दी। साथ ही साथ सबसे यह भी कह दिया कि भाई, यह बात कहीं प्रकट न होने पावे, नहीं तो रघुराजसिंह मुझे जीता न छोड़ेंगे। जानते ही हो कि मैं उनके यहाँ नौकरी करता हूँ।

दमड़ी तिवारी गाँव के ज़मींदार रघुराजसिंह के यहाँ नौकरी करता था। कुछ दिन पहले गाँव की एक अधेड़ विधवा मल्लाहिन से उसकी

आशनाई की बात फूट निकली। इसको लेकर शीतल उपाध्याय ने दमड़ी के विरुद्ध भारी आन्दोलन मचाया था। इतना ही नहीं, ब्राह्मण होकर मल्लाहिन से फँसने के लिए उसको सामाजिक दण्ड देने की कोशिश भी उपाध्यायजी ने की थी। इस कारण दमड़ी शीतल से मन ही मन बहुत चिढ़ता था। वह बहुत दिनों से इसका बदला लेने का मौक़ा ढूँढ़ता फिरता था। इतने दिन बाद वह मौक़ा मिल गया।

शीतल पण्डित के उस बर्ताव का बदला लेने के लिए उस दिन की बैठक में दमड़ी ने जो बात कही थी वह सोलहों आने उसकी गढ़ी हुई नहीं थी।

धनराज और सरस्वती पड़ोसी थे। बचपन से ही दोनों में हेल-मेल था। एक ही गाँव के लड़का-लड़की होने से वे बचपन से एक ही जगह बड़े हुए हैं, एक साथ ही खेले-कूदे हैं, एक ही तालाब में एक साथ तैर चुके हैं। गाँव की दूसरी लड़कियों से भी धनराज का हेलमेल था मगर सरस्वती का मकान उसके मकान के पास ही था, इससे उन दोनों की एक दूसरे के घर आवाजाही अधिक थी। इस कारण दूसरी लड़कियों की अपेक्षा सरस्वती से धनराज के कुछ अधिक मेल-जोल होने का अवसर भी मिला था।

इस घटना के कई वर्ष पहले एक दिन किसी कारण धनराज स्कूल नहीं गया। दोपहर को वह अपने घर में न रहकर उपाध्याय के घर के पिछवाड़ेवाले बग़ीचे में चला गया और अमरूद के एक पेड़ पर चढ़कर बड़े प्रेम से कच्चे अमरूद चबाने लगा। इतने में उसने देखा कि सरस्वती बग़ीचे में एक तरफ़ खड़ी होकर कोई चिट्ठी पढ़ रही है। सरस्वती हाल ही ससुराल से लौटी थी। वह किसकी चिट्ठी इतने चाव से पढ़ रही है, यह चतुर धनराज की समझ में आते देर न लगी। अमरूद खाते खाते उसके मन में शरारत सूझी। वह पेड़ से धीरे धीरे उतरा और चुपके चुपके सरस्वती के पीछे जाकर चट से उसके हाथ से चिट्ठी छीनकर भागा। सरस्वती को मालूम नहीं था कि कोई यहाँ छिपा

हुआ है। उसने उलटकर देखा तो धनराज को चिट्ठी लेकर भागते पाया पहले तो शर्म के मारे उसके मुँह से कोई बात न निकली। पीछे उसने अपने को कुछ सँभालकर कहा—धनराज भैया, चिट्ठी दे दो, नहीं तो अच्छा न होगा।

धनराज निःशङ्क चित्त से हाथ में लिया हुआ अमरूद दाँतों से काटने के बाद सरस्वती को सुना सुनाकर चिट्ठी पढ़ने लगा—

"प्राणप्यारी सरस्वती......"

सरस्वती से रहा नहीं गया, वह चिट्ठी छीनने के लिए धनराज पर जा टूटी। धनराज भी छोड़नेवाला नहीं था। दोनों चिट्ठी के लिए छीना-झपटी कर रहे थे कि इतने में उन्होंने देखा कि बग़ीचे के पास के रास्ते पर खड़ा होकर दमड़ी एकटक उन्हीं दोनों की ओर देख रहा है। दमड़ी को देखते ही धनराज चिट्ठी फेंककर उस जगह से भाग गया। सरस्वती चिट्ठी लेकर धीरे धीरे अपने घर के भीतर चली गई।

उस दिन धनराज का सारा समय डर में ही बीता। वह सोचता था कि मैंने तरङ्ग में आकर अच्छा काम नहीं किया। उसके पिता बड़े कड़े मिज़ाज के आदमी हैं। वे ज़रा भी जान जायँगे कि लड़का उपाध्याय की लड़की के साथ चिट्ठी के लिए छीना-झपटी कर रहा था तो उसको जीता न छोड़ेंगे। सरस्वती से समझौता करने के लिए वह उसी दिन शाम को उसके घर गया और उससे कहा—किसी से कहना मत सरस्वती बहन!

सरस्वती का क्रोध उस समय भी शान्त नहीं हुआ था, उसने कहा—क्यों नहीं कहूँगी! मैं कल ही जाकर काकी से कहूँगी।

धनराज ने गिड़गिड़ाकर कहा—तेरे पाँव पड़ता हूँ बहन! फिर कभी तेरी चिट्ठी नहीं पढ़ूँगा।

वह बड़ी कठिनाई से सरस्वती को शान्त करके घर लौटा, मगर दमड़ी को जब तक शान्त न कर ले, तब तक उसका मन निश्चिन्त नहीं हो रहा था।

दमड़ी बड़ा बदरूप था। उसके एक आँख नहीं थी। गाँव के अच्छे लड़के पीठ पीछे और शरारती लड़के सामने ही उसको काना दमड़ी कहा करते। धनराज ने भी दो-एक बार दमड़ी को काना कहकर चिढ़ाया है। वह समझता था कि इस बार दमड़ी मुझे न छोड़ेगा। कई दिन बड़ी फ़िक्र में बीतने के बाद धनराज ने जब देखा कि दमड़ी ने इस बात की कहीं चर्चा नहीं की तब उसके जी में जी आया।

लेकिन दमड़ी ने उस दिन जो घटना अपनी आँख से देखी थी, उसको वह भूल न सका। शीतल पर उसकी जो चिढ़ थी, उससे वह उसी दिन हल्ला मचा देता, मगर इसमें उसके मालिक के लड़के के शामिल रहने से वह मन मसोसकर रह गया। तभी से वह मौक़ा ढूँढ़ रहा था। अचानक सरस्वती के लापता हो जाने से उसने उस पुरानी घटना के साथ एक नया क़िस्सा रचकर गाँव भर में फैला दिया।

ख

रघुराजसिंह इसी गाँव के ज़मींदार थे। आजकल की शिक्षा पाये हुए होने पर भी वे आधुनिक शिक्षा के कट्टर विरोधी थे। गाँव में उनकी बड़ी धाक थी। लड़कपन में वे ज़िले के सदर मुक़ाम में रहकर पढ़ते थे। अचानक न जाने क्यों पढ़ना छोड़कर गाँव लौट आये और पिता से कह दिया कि अब मैं नहीं पढ़ूँगा। अपनी ज़मींदारी का काम देखूँगा। रघुराज के पिता पुराने ख़याल के आदमी थे। लड़के की यह मति-गति देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उसे ज़मींदारी के काम में लगा दिया। तभी से रघुराजसिंह अपनी ज़मींदारी देखते आते हैं। पिता के चल बसने के बाद उनका इलाक़ा बढ़ा ही था, घटा कुछ नहीं। शहर के नाम पर रघुराजसिंह को चिढ़ थी। शहर को ऐसी गन्दी-गन्दी बातें वे कहते कि सुनकर भलेमानस शहरवालों के लिए बरदाश्त करना मुश्किल हो जाता। धनराज जब हाईस्कूल पास करके निकला तब रघुराजसिंह बहुत चाहते थे

कि अपनी छावनी की लिखा-पढ़ी का भार इसके सपुर्द कर दें मगर न जाने क्यों अपनी स्त्री की बात मानकर कालेज में पढ़ने के लिए उसे काशी भेज दिया।

सरस्वती के लापता होने की बात गाँव में घर-घर पहुँच जाने पर भी आश्चर्य की बात है कि वहाँ के ज़मींदार रघुराजसिंह से छिपी ही रही। रघुराजसिंह बड़े कड़े मिज़ाज के आदमी थे। उनकी दृष्टि के सामने रत्तीभर भी बात छिपी नहीं रह सकती थी, परन्तु यह समाचार न जाने कैसे उनका कान बचाकर उनके ज़नाने में जा पहुँचा। ज़मींदार की घरनी होने पर भी रघुराज की पत्नी पार्वती का अपना कोई प्रभाव नहीं था। रघुराज के कड़े मिज़ाज और कठोर शासन के वातावरण में उस मकान में किसी के व्यक्तित्व को बढ़ने का अवसर नहीं मिलता था। वे अन्दर और बाहर के ऐसे मालिक थे कि पार्वती जैसी नेक स्त्री के लिए अपने मन से कोई काम करने का उपाय नहीं था। जब पार्वती के पास ख़बर पहुँची कि उसका लड़का पड़ोसी की लड़की सरस्वती को लेकर भाग गया है, तब वह बहुत ही व्यथित हुई। बात पति से कहने लायक़ नहीं है, नहीं तो पहली आफ़त अपने ही ऊपर आ सकती है; क्योंकि रघुराजसिंह धनराज को काशी नहीं भेजना चाहते थे, सिर्फ़ पत्नी के कहने से ही वे राज़ी हुए थे। फिर यह समाचार पाकर वे धनराज को क्या दण्ड देंगे इसकी कल्पना भी पार्वती न कर सकी। एक बार उसके जी में आया कि धनराज को चुपके से चिट्ठी लिखकर पता लगावे कि यह बात कहाँ तक सच है। माँ का मन यह विश्वास ही नहीं करना चाहता था कि धनराज ने इतनी बड़ी कार्रवाई कर डाली है। जिस आदमी ने पार्वती से यह बात कही थी, उसने यह भी कहा था कि पहले से ही धनराज से सरस्वती की आशनाई थी, किन्तु माता को यह सोचकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुझे इस आशनाई की बात ज़रा भी नहीं मालूम हुई। फिर सोचा—हो भी सकता है, कौन माता अपने लड़के पर इस विषय में सन्देह कर सकती है! धनराज को चिट्ठी लिखने की बात जी

में आते ही और एक प्रश्न खड़ा हुआ कि चिट्ठी कौन लिख देगा! और लिखी जाने पर भी मालिक के पढ़े और हुक्म दिये बिना कोई चिट्ठी महल के बाहर जा नहीं सकती थी।

इस झूठी-सच्ची और आशा-निराशा की विषम उलझन में पार्वती दिन बिताने लगी। उसके मकान में नाते-गोते की कितनी ही स्त्रियाँ रहती थीं, मगर उनसे वह अपने लड़के के बारे में इस विषय की सलाह या चर्चा नहीं कर सकती थी। यह चिन्ता और लड़के के लिए मनोव्यथा अकेली पार्वती को सहनी पड़ती थी। पार्वती को शीतल उपाध्याय की पत्नी उपधाइन से कम मानसिक कष्ट नहीं था। पार्वती चाहती थी कि एक बार सरस्वती की माँ के पास जाकर मामले को अच्छी तरह समझ आवे। वे दोनों बचपन में बहू बनकर साथ ही इस गाँव में आई थीं। उस समय से अब तक सुख-दुःख में उन दोनों की मिताई बढ़ती ही जा रही थी। अचानक इस घटना के हो जाने से सरस्वती की माँ के सामने उसे मुँह दिखाने में शर्म मालूम होने लगी। पण्डिताइन पहले प्रायः प्रतिदिन दोपहर को एक बार महल्ले में घूमने निकलतीं, मगर तीर्थ से इतनी बड़ी शर्म की टोकरी लेकर लौटने के बाद से वे अब कहीं देखने में नहीं आतीं।

गाँव में सरस्वती की जो चर्चा और आन्दोलन चला था, वह दिन पर दिन घटने लगा। गाँव के बूढ़ों ने पहले इस पर ख़ूब हो-हल्ला मचाया था। मगर रघुराजसिंह के लड़के का नाम सुनकर सभी अचानक चुप हो गये। फिर कुछ दिन युवकों में इसकी चर्चा रही। अन्त में सिर्फ़ लड़कों की ज़बान पर रह गई।

सरस्वती का एक छोटा भाई था, जिसका नाम महादेव था। महादेव धनराज के भाई बलराज के साथ एक ही दर्जे में पढ़ता था। बहन के काशी में खो जाने के बाद उसके घर में और बाहर जो चर्चा चलती थी उसको समझने की उम्र महादेव की हो गई थी। इसके कारण कितनी बदनामी और सामाजिक अप्रतिष्ठा उसके घरवालों को सहनी

पड़ती है और उसमें से कितनी उसके हिस्से पड़ रही है, इसको वह मन ही मन अनुभव कर रहा था। स्कूल के मास्टर पढ़ाते-पढ़ाते जब कभी तिरछी निगाह से या एकटक उसकी ओर देखते या उसके सहपाठी जब उसकी ओर देखकर या उसके सामने पड़ जाने पर आपस में तरह-तरह की बातें करने लगते, उस समय वे बातें सुनाई न पड़ने पर भी महादेव के कलेजे में इस तरह जाकर लगतीं कि बेचारा व्यथा से व्याकुल हो जाता। चित्त पर लज्जा और अपमान का यह भीषण भार उसे अकेले ही लेकर घूमना पड़ता; क्योंकि उसकी जो उम्र और अवस्था थी उसमें हार्दिक मित्र मिलना मुश्किल था। वह अपने माँ-बाप से बहन की कोई बात पूछ नहीं सकता था। वे लोग जो कष्ट भोग रहे हैं, उसको वह दोनों वक्त अपनी आँखों देखता था। वह समझता था कि कुछ पूछने पर वे लोग और दुखी होंगे। इसी से वह चुप मारे रहता था।

महादेव की बहन और बलराज के भाई के सम्बन्ध में लोगों में जो बदनामी की बात फैली थी, उससे महादेव और बलराज दोनों के मन की दशा समान होनी चाहिए थी। चर्चा जब पहले-पहल उठी, तब महादेव की देखादेखी बलराज भी शर्म के मारे सिर नीचे कर लेता था, मगर दो ही चार दिन में दर्जे के लड़कों ने उसको समझा दिया कि इसमें तुम्हारे शर्माने की कोई बात नहीं; क्योंकि शर्म की बात सिर्फ़ लड़की-पक्ष के लिए है, मर्द-बच्चे के लिए इसमें क्या लाज है। धीरे-धीरे ऐसा समय भी आ गया कि दर्जे के लड़के बलराज के भाई की बहादुरी बखानने लगे। स्कूल में पढ़ाई शुरू होने के पहले लड़कों में जब यह क़िस्सा छिड़ता और वे धनराज को बहादुर लड़का कहकर उसकी बड़ाई करते तब अपने को ऐसे बहादुर का छोटा भाई समझकर बलराज भी मन ही मन गर्व का अनुभव करता। ऐसा भी हुआ है कि दर्जे के लड़के सरस्वती के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं, उनमें से कोई भद्दा मज़ाक़ कर बैठा जिससे सभी लड़के ठहाका मारकर हँस पड़े; इतने में उदास चेहरे से महादेव दर्जे में आया। अचानक वह अट्टहास बन्द हो गया। कोई

लड़का उस समय भी अपनी हँसी न रोक सका, वह मुँह पर कपड़ा रख-कर महादेव की ओर तिरछी नज़र किये उस समय भी हँस रहा है। किसकी बात चल रही थी, किसके कारण इतनी हँसी है यह मालूम न रहने पर भी उसे समझने में देर न लगती। कभी कभी लड़के किसी दूसरी बात पर हँसी-मज़ाक़ करते तो भी महादेव समझ लेता कि मेरी बहन की बात ही चल रही है। ऐसा दारुण दुःख सहना उस बेचारे के लिए कठिन हो गया। उसने मन ही मन सोचा कि अब मैं स्कूल नहीं जाऊँगा। किसी से बिना कुछ कहे काशी जाकर बहन का पता लगाऊँगा।

एक दिन सबेरे स्कूल जाने के समय उसने अपनी माता से कहा कि "अब मैं पढ़ने नहीं जाऊँगा।" पढ़ने-लिखने में उसका बड़ा मन लगता था। दूसरे लड़कों की तरह स्कूल जाने में उसने कभी आना-कानी नहीं की थी। आज उसके मुँह से यह बात सुनकर माता ने पूछा—"क्यों नहीं जाओगे? क्या हुआ?"

इसका कोई जवाब महादेव ने नहीं दिया। क्या हुआ है यह सभी लोग जानते हैं, फिर भी मुँह खोलकर कुछ कहने लायक़ नहीं है। महा-देव इस क्यों का जवाब न देकर चुप मारे बैठा रहा। माता ने उसकी ठुड्डी पकड़कर हिलाई। उसके मुँह की ओर देखते हुए फिर पूछा—"स्कूल क्यों नहीं जाओगे बेटा? क्या हुआ है?"

महादेव सिसक-सिसककर रोने लगा। बोला—"माँ, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, अब मुझे स्कूल जाने के लिए मत कहो।"

इतने दिन स्कूल में उसके ऊपर जो व्यङ्ग-बाण चले थे, वह सब उसके मुँह से झोंक में निकल गया। लड़के की बात सुनकर माता भी रोने लगी। उपाध्यायजी बाहर चबूतरे पर बैठकर कुछ कर रहे थे, अचानक रोने की आवाज़ सुनकर भीतर आये और स्त्री के मुँह से हाल सुनकर सन्न हो गये। फिर धीरे-धीरे घर के बाहर चले गये।

रघुराजसिंह अभी अपनी बैठक में आकर बैठे थे। चौकी पर बिछी दरी पर एक जगह तकिया लगाये गुड़गुड़ी पी रहे थे और चारों ओर

पाँच-सात कर्मचारी एक-दूसरे से हटकर या सटकर बैठे थे। इतने में आँधी की तरह शीतल उपाध्याय उस घर में आ घुसे। उनका उस समय का चेहरा देखकर बैठक के सभी लोग डर गये। शीतल पण्डित दाहिने हाथ में जनेऊ पकड़कर रघुराजसिंह से चिल्लाकर बोले—"बाबू साहब, इसका इन्साफ़ कीजिए। आप गाँव के ज़मींदार हैं, गो-ब्राह्मण के रक्षक हैं। किस कारण से मेरे साथ इतना अन्याय हो रहा है, यह मैं जानना चाहता हूँ।"

शीतल पण्डित की बात-चीत और इस प्रकार का चेहरा देखकर बैठक के सभी आदमी उनके आने का कारण समझ गये थे, मगर रघुराज-सिंह ने समझा कि शायद लगान या ज़मीन के सम्बन्ध में ब्राह्मण के साथ कुछ गड़बड़ हुई है। उन्होंने इनको बैठने की जगह देकर कहा—"बैठिए, बैठिए पण्डित जी! इतने नाराज़ क्यों हो गये हैं! मामला क्या है, साफ़ कहिए तो।"

उस समय शीतल पण्डित की आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं; उन्होंने चिल्लाकर कहा—"मामला साफ़ कहना होगा! क्या हुआ है, यह बात गाँव का कौन आदमी नहीं जानता!"

रघुराजसिंह किसी विषय में बहुत बकवाद करना बिलकुल पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने कुढ़कर अपने कर्मचारियों की ओर देखते हुए पूछा—"उपाध्यायजी का क्या हुआ है! तुम लोगों में से कोई कुछ जानता है!"

उस समय अधिकांश कर्मचारी बही-खाते की ओर इस तरह आँखें गड़ाये हुए थे, मानों काम में बड़े तल्लीन हो गये हैं। दो-एक ने उनकी आवाज़ सुनकर बही-खाते की ओर से सिर उठाकर मुँह पर ऐसा भाव दरसाया, मानो वे लोग इस विषय में कुछ भी नहीं जानते।

दमड़ी हमेशा मालिक के सामने से अलग एक कोने में बैठकर काम करता था। शीतल उपाध्याय के आने से वह कुछ चौंक उठा था। उसने समझा कि मेरी शामत आई है, अब शायद बाप-दादे की बुनियाद

छोड़नी पड़ेगी। वह मन ही मन देवी-देवता मनाता हुआ बही-खाते पर क़लम रगड़ने लगा।

रघुराजसिंह ने नाराज़ होकर कहा—"कोई तो कुछ नहीं जानता पण्डितजी! आप ही साफ़ बताइए।"

शीतल पण्डित बोले—"सरस्वती का पता नहीं लग रहा है, यह बात तो आप जानते हैं न?"

रघुराजसिंह इस विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। उन्होंने अकचकाकर कहा—"ऐं सरस्वती! वह कहाँ गई?"

"कहाँ गई! आपका सपूत उसे लेकर भाग गया है।" यह कहकर शीतल पण्डित सरस्वती के लापता होने का इतिहास आद्योपान्त कह गये।

रघुराजसिंह को ज़िन्दगी में इतना आश्चर्य कभी नहीं हुआ था। सबसे अधिक आश्चर्य उनको इस बात पर हुआ कि इस बात को गाँव के बालक-बूढ़े सभी जानते हैं, सिर्फ़ वे ही नहीं जानते, यद्यपि उनके ख़ान्दान के साथ ही इस घृणित घटना का घनिष्ठ सम्बन्ध है। रघुराजसिंह सोचने लगे कि शायद और भी कितनी ही बातें, कितने ही काण्ड, उनके मकान में और गाँव में उनके आँख-कान की आड़ में होते जा रहे हैं। उन्होंने सामने से गुड़गुड़ी ज़ोर से हटाकर पुकारा—"दमड़ी!"

दमड़ी अभी तक मन ही मन देवी-देवताओं की दोहाई दे रहा था। मालिक की पुकार पर वह सिटपिटाता और कुछ काँपता हुआ उनके सामने जा खड़ा हुआ।

रघुराजसिंह ने कहा—"इस विषय में जो कुछ जानते हो, साफ़-साफ़ बतलाओ। एक भी बात छिपाओगे तो इस गाँव में रहने नहीं पाओगे। जानते हो न, मेरा नाम रघुराजसिंह है।"

बैठक के सभी आदमी सोचने लगे, आज हम लोगों के सामने ब्रह्महत्या न हो जाय। सभी लोग सन्नाटे में आकर दमड़ी की उस गिद्ध जैसी मूर्ति की ओर देखने लगे।

दस-पन्द्रह आदमियों की मामूली बैठक में दमड़ी ने चुपके-चुपके जो बातें कही थीं वे सब अब, इतने दिन बाद, उसे ठीक से याद भी नहीं थीं। इससे उसने काँपते तथा हिचकते हुए सरस्वती और धनराज के सम्बन्ध में नियमित रूप से एक इतिहास झटपट गढ़कर सुना दिया। दमड़ी ने कहा—"शीतल पण्डित के घर लौट आने के बाद मेरे फुफेरे भाई का साला पश्चिम जा रहा था। उसी रेलगाड़ी में उसने धनराज और सरस्वती को देखकर मेरे पास चिट्ठी में लिख भेजा था।"

रघुराजसिंह चौकी पर ज़ोर से हाथ पटककर बोले—"इतने दिन तुमने यह बात मुझसे क्यों नहीं कही, उल्लू!"

दमड़ी ने चार-पाँच क़दम पीछे हटकर कहा—"डर के मारे नहीं कहा।"

रघुराजसिंह और किसी से कुछ न कहकर बैठक से उठकर ज़नाने में चले गये।

ग

पार्वती अभी स्नान करके पूजा पर बैठी थी। एक तरफ़ मज़दूरनी इसरी बाज़ार से लाया हुआ सौदा रखकर हिसाब जोड़ रही थी, हिसाब में कुछ पैसों की कमी पड़ रही थी। पार्वती ने उसकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया; वह आसन पर बैठकर माला जप रही थी। इसरी ग़ौर से हिसाब जोड़ रही थी, अचानक सिर का कपड़ा सँभालकर बोल उठी—"ऐं सरकार आ गये!" अब वह बाज़ार से वापस लाये हुए पैसों को आँचल के एक कोने में बाँधती हुई वहाँ से हट गई। रघुराजसिंह ठाकुर जी की कोठरी के सामने आकर दरवाज़े पर खड़े हो गये।

इस समय मालिक यहाँ! पार्वती को आश्चर्य हुआ। बात क्या है! उसने अकचकाकर पति की ओर देखा। उस समय रघुराजसिंह का सारा शरीर क्रोध से काँप रहा था। यह चेहरा देखकर पार्वती जप भूल गई। पूछा—"क्या हुआ!"

रघुराजसिंह ने कहा—"सुनी तुमने अपने सपूत की करतूत!"

पार्वती ने घबराकर पूछा—"किस लड़के की कौन सी करतूत ?"

"तुम्हारे घनराज की करतूत, जिसको तुमने काशी भेजा है भारी विद्वान् बनने के लिए।"

पार्वती इस इशारे का अर्थ साफ़ समझ गई; मगर यह बात मालिक के कान तक किसने पहुँचाई !

उसको आशंका हुई कि जब मालिक के कान तक बात पहुँची है, तब कोई अघटित घटना ज़रूर हुई होगी। उसको स्वयं उस बात पर विश्वास नहीं है। उसका मन बार-बार यही कह रहा था कि यह बात झूठ है। बिलकुल झूठ है।

'मानो कुछ भी नहीं जानती' यह भाव दिखाते हुए पार्वती ने कहा—तुम किसकी बात कह रहे हो ! घनराज की ! उसने क्या किया है !

रघुराजसिंह ने कहा—शीतल पण्डित अपनी लड़की सरस्वती वग़ैरह को लेकर काशी ग्रहण नहाने गये थे। वहाँ से सभी लौट आये हैं, सिर्फ़ सरस्वती नहीं लौटी। कहते हैं कि घनराज उसको बहकाकर कहीं उड़ा ले गया है।

इस पर पार्वती के बदन में आग सी लग गई। उसने कहा—"घनराज उसको बहका ले गया है !"

"हाँ, तुम्हारा घनराज बहका ले गया है।"

पार्वती ने आसन से उठकर गरजते हुए कहा—"झूठी बात है। किसने ऐसा कहा है !"

रघुराजसिंह कुछ ठिठक गये। उन्होंने पार्वती की ऐसी मूर्ति पहले कभी नहीं देखी थी। उन्होंने कहा—"दमड़ी का कोई रिश्तेदार रेल से कहीं जा रहा था; उसने उसी गाड़ी में घनराज और सरस्वती को एक साथ कहीं जाते देखा है।"

"दमड़ी ने कहा है ! उस बदमाश पियक्कड़ ने कहा है !"

"मगर इस मामले में उसके झूठ बोलने का तो कोई कारण नहीं है।"

बात तो ठीक है। पार्वती ने सोचा—दमड़ी हमारा ही नौकर है। हमारे लड़के को झूठमूठ बदनाम करने से उसका नुक़सान ही है, फ़ायदा नहीं। तब ! फिर यह बात दूसरे लोगों की ज़बान पर कैसे जाती ! गाँव में और भी तो आदमी हैं, काशी में भी आदमियों की कमी नहीं है। सब को छोड़कर हमारे लड़के धनराज पर ही लोग इस कलङ्क का चक्र क्यों चलाते ! इस 'क्यों' का जवाब नहीं सूझता।

पार्वती ने कहा—तो अब तुम क्या करना चाहते हो !

रघुराजसिंह ने कहा—क्या करूँगा यह भी सोच लिया है। अभी धनराज को चिट्ठी लिखूँगा। वह आकर मेरे सामने खड़ा हो और जवाब दे कि और किसी पर नहीं, उसी पर यह कलङ्क क्यों लगा है। उसके बाद मैं उचित कार्रवाई करूँगा।

पार्वती ने कहा—"मगर देखो, सिर्फ़ लोगों के मुँह से उड़ती ख़बर सुनकर पहले से ही लड़के की थुक्का फ़ज़ीहत करने का निश्चय मत कर लो। चाहे जो हो, लड़का अब बड़ा हो गया है। मैंने कभी तुमसे कुछ कहने की हिम्मत नहीं की, आज बड़े कष्ट से यह अर्ज़ करती हूँ कि पहले असली बात का पता ठीक तौर से लगा लो, पीछे दोषी समझना तो जो सज़ा उचित समझना, देना।"

"मैं अब इसमें कुछ पता लगाने की ज़रूरत नहीं समझता। जब बनारस जैसी जगह में लड़के को तुमने अकेला छोड़ दिया है, तब ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है। ख़ैर, तुमसे पहले ही कहे देता हूँ कि इसके बाद मेरे सामने रोना-गिड़गिड़ाना नहीं चलेगा। मैं सुनूँगा नहीं। मैं धनराज से साफ़ जवाब चाहता हूँ। उसके बाद जो करना है, वह करूँगा।" यह कहकर रघुराजसिंह वहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरे, तुरन्त बैठक में चले आये। अब धनराज को चिट्ठी लिखनी होगी।

मालिक के चले जाने पर पार्वती कुछ देर चुपचाप वहीं खड़ी रही। फिर ठाकुरजी के सामने दण्डवत् करके बोली—"हे भगवन्! इस बार लड़के को बचाओ। मेरे मुँह में कालिख न लगने पावे।"

घ

शिवपूजनसिंह सकलडीहा के एक ज़मींदार का लड़का है। काशी में पढ़ता था। डक्का की इमली के पास एक अच्छा सा मकान किराये पर लेकर साहबी ठाट-बाट से रहता और क्वींस कालेज के इंटरमीडिएट में पढ़ता था। उसके निवास-स्थान पर रसोइया, मज़दूरनी और एक ख़िदमतगार रहते थे। इसके सिवा उसके यहाँ बाहरी आदमियों का आना-जाना इतना अधिक था और हमेशा इतनी चहल-पहल रहती कि बाहर से अनजान आदमी सुनकर समझते—यहाँ कोई उत्सव हो रहा है।

शिवपूजन की उम्र बाईस-तेईस वर्ष की थी। बड़ा शौक़ीन लड़का था। विलक्षण चेहरा था। दाढ़ी-मूँछ मुड़वाये रहता और चश्मा लगाता था। वह हारमोनियम बजाना जानता, गाना जानता और कुछ-कुछ चित्र बनाने का भी उसे अभ्यास था। बड़े ज़मींदार का लाड़ला लड़का होने पर भी वह कोरा गोबर-गणेश नहीं था। मगर यह बात नहीं है कि उसमें कमज़ोरी नहीं थी। हमजोलियों के मुँह से अपनी प्रशंसा सुनना उसे अच्छा लगता। सीधे-सादे शब्दों में कह सकते हैं कि जान में हो चाहे अनजान में, ख़ुशामद से वह बच नहीं सकता था।

मित्रों और समवयस्कों की मण्डली में वह बड़ा भारी कलाकार माना जाता था। मित्र लोग कहा करते कि सिर के बाल छँटवाने या कन्धे पर चादर रखने से लेकर घूमने-फिरने तक उसकी सभी बातें क़ायदे से होती हैं। सूचीपत्र देखकर शिवपूजन ने जब इबसन और बरनार्ड शा की पुस्तकें मँगवाईं तब इबसन की एक पुस्तक के पन्ने खोलकर मित्र हर्षचन्द्र ने चिल्लाकर कहा—यही तो कलाकार का लक्षण है।

शिवपूजन अपने ख़ानदान की एक विचित्र घटना बड़े गर्व से कहा करता। कई पीढ़ी पहले उस ख़ानदान के अधिकांश पुरुष वेश्याओं के यहाँ जाना बहुत पसन्द करते थे। अपनी स्त्री के हज़ार रूपवती होने पर भी वे लोग जब तक बाज़ार के कोठे पर न घूम आते, तब तक उनको

कल न पड़ती—ठीक वैसे ही जैसे कितने ही आदमी या बालक घर में बढ़िया से बढ़िया चीज़ बनी रहने पर भी जब तक बाज़ार की चीज़—मीठी या नमकीन—नहीं खा लेते, तब तक उनकी जीभ नहीं मानती। जब घर का पुरखिन के कहने का भी कुछ असर न हुआ तब एक दिन बुढ़िया ने घर की सभी बहुओं से सलाह करके एक नया उपाय किया। पुरुषों के भोजन के समय क़रीब दोपहर को सभी स्त्रियाँ ठीक वेश्याओं की तरह सिङ्गार-पटार करके नङ्गे सिर क़तार बाँधकर दालान में बैठ गईं। घर के मर्द भोजन करने आये तो सामने औरतों को लाज-हया छोड़कर नङ्गे सिर बैठे देख ठिठक गये। वे अन्दर आने के बदले बाहर निकल गये। बुढ़िया ने कहा—"आइए, आइए, आप लोग अन्दर आइए; बाहर क्यों चले गये!"

पुरुषों में से सबसे बड़े ने पूछा—"आज घर भर की स्त्रियों की यह बेहयाई कैसी?"

बुढ़िया ने कहा—"बेहयाई क्या है! आप लोगों को यही ठाट-बाट और हाव-भाव पसन्द है, तभी तो आप लोग कोठों पर जाते हैं। हम लोगों ने सोचा है कि जब मर्दों को यही ढङ्ग पसन्द है तब हम लोग भी यही ढङ्ग क्यों न अख्तियार करें।"

मर्दों ने लज्जित होकर कहा—"हम लोग अपनी भूल मानते हैं। हम कान पकड़ते हैं, आज से फिर कभी वेश्या के यहाँ जाने का नाम न लेंगे।"

इस तरह बुढ़िया ने मर्दों की मति-गति सुधार दी।

अपार धन के बीच में रहने से जवानी के आरम्भ में ही दुनिया की सभी चीज़ें शिवपूजन के लिए ऐसी सुलभ हो गईं थीं कि सहज में मिलनेवाली चीज़ों को पाने की इच्छा तो उसके चित्त से दूर हो ही रही थी, इसके सिवा वह ऐसी चीज़ों का त्याग करना ही पसन्द करता था।

घर पर विधवा माता और उम्र में बहुत ही छोटा एक भाई था। अभी तक इसका ब्याह नहीं हुआ था। माता ने जिस दिन देख-सुनकर एक रूपवती कन्या ठीक की, उसी दिन शिवपूजन ने एक बड़ा

भारी उपन्यास समाप्त करके लम्बी साँस लेते हुए सोचा—वस्तुतः यह भी कोई ब्याह है ! बिना देखे-सुने कहीं से एक लड़की पीताम्बर की पोटली में बाँधकर लाई गई और पीठ पर लाद दी गई। उसी को इसी तरह पीठ पर लादे सारा जीवन बिताना होगा ! मेरे साथ उसकी पटरी बैठेगी कि नहीं, इसमें घोर सन्देह है। सम्भव है, जिस समय मैं टेनिसन के काव्य में तल्लीन होकर इस असीम नीले आकाश की ओर देखने लगूँ उस समय वह आँखों में आँसू भरकर मायके की बिल्ली के लिए विलाप करने लगे।

उसने जाकर माँ से कहा—"मैं अभी ब्याह की ज़रूरत नहीं समझता, जिस दिन ज़रूरत समझूँगा उस दिन कहूँगा। मैं इस समय बनारस जाता हूँ। कल हमारा कालेज खुल जायगा।"

बेटे की बात सुनकर माता दङ्ग रह गई, मगर कुछ बोली नहीं। सिर्फ़ एक बार आसमान की ओर देखकर उसने गहरी साँस ली। लड़के ने यह तो नहीं न कहा कि ब्याह करेगा ही नहीं।

काशी आकर शिवपूजन ने मित्रों में यह मत प्रकट कर दिया कि पहले से प्रेम हुए बिना ब्याह करना ही न चाहिए।

मित्र गणेश शिवपूजन का सबसे बड़ा हिमायती था। कारण यह था कि उसकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। वह शिवपूजन से मौक़े बेमौक़े ख़ूब सहायता भी पाता था। घूमने निकला है, अचानक उसका जूता फट गया। चट उसने शिवपूजन का क़ीमती जूता पहन लिया और उसे स्थायी रूप से अपना बना लिया। बीच-बीच में घर में किसी के बीमार पड़ने पर वह आकर शिवपूजन से डाक्टर की फ़ीस और दवा का दाम माँग ले जाता। इसमें कभी रुकावट न पड़ती और शिवपूजन कुछ जवाब तलब भी न करता। वह चुपचाप इन सब बातों में तरह देता आया है। इस हालत में गणेश की ओर से उसकी प्रशंसा के पुल बँधने में आश्चर्य ही क्या है।

शिवपूजन की बात सुनकर गणेश ने कहा—"बेशक, बेशक।"

लेकिन गणेश का ब्याह हो गया था और उसके ब्याह के पहले प्रेम का कोई चिह्न देखने में नहीं आया था। गणेश की स्त्री ऐसी ठेठ देहात से आई थी, जिस तरफ़ गणेश ने सपने में भी पैर नहीं रक्खा था।

सुदर्शन ने कहा—"तुम तो ऐसा मत कहो गणेश! तुम्हारे मुँह से यह बात शोभा नहीं पाती। तुम्हारी स्त्री पहले आई, पीछे प्रेम हुआ। स्त्री की प्राप्ति के पहले उसके साथ प्रेम या 'लव' नहीं हुआ।"

शिवपूजन ने हँसकर कहा—"ज़रा भी धैर्य नहीं हुआ भाई!"

गणेश ने कुछ शर्म भरी हँसी के साथ कहा "भूल हो गई, भाई!"

शिवपूजन को बस यही पसन्द था कि जो काम मित्रों में से कोई न कर सके, वह काम मैं करूँ। इतने में एक नई बात हुई। वह थी एक मोटरगाड़ी की। चेतगञ्ज की जिस गली में शिवपूजन ने घर लिया था उस गली के मोड़ पर ही एक ठाकुर एक मोटर ख़रीदकर रात-दिन चलाने लगा। यह देखकर शिवपूजन के किसी मित्र ने एक दिन कहा—"भाई शिवपूजन! इस आदमी ने तो नाकों दम कर दिया। जब तक तुम मोटर नहीं ख़रीदोगे, तब तक इसका मान-मर्दन न होगा।"

शिवपूजन ने कहा—"अच्छा!"

फिर तो जो कहा, वह कर दिखाया। एक महीने के अन्दर कलकत्ते से भारी दाम की एक मोटर आ गई।

अब तो मोटर का नशा शिवपूजन पर ऐसा सवार हुआ कि गाना-बजाना और इबसन-बरनार्ड सब चूल्हे में चले गये। जिस चीज़ में हाथ लगाना उसके इस्तेमाल को हद तक पहुँचा देना शिवपूजन के स्वभाव में रोग के ऐसा हो गया था। मोटर पाकर उसने उसको चलाना सीखा और लाइसेन्स लेकर अपने को बिलकुल मोटर-एक्सपर्ट (विशेषज्ञ) बना डाला। चाहे जब झट से मोटर लेकर निकल पड़ने और और काशी में इधर-उधर चक्कर लगा आने की सनक सी उस पर सवार हो गई। अब कालेज के लेक्चर में उसका मन नहीं लगता था। अन्त में इस मोटरबाज़ी के सिलसिले में एक दिन एक भारी घटना हो गई।

उस दिन ग्रहण था। दूर-दूर के यात्री आकर काशी में जमा हुए थे। शिवपूजन के सभी मित्रों ने स्वयंसेवकों में नाम लिखवाया था, इससे सभी अपनी-अपनी ड्यूटी पर चले गये। गणेश चालाक लड़का था। उसने स्वयंसेवकों में नाम नहीं लिखवाया। बातचीत में एक दिन शायद शिवपूजन ने कहा था--तुम सभी झुण्ड बाँधकर जा रहे हो, मैं अकेला घर बैठकर क्या करूँगा ! चलो, मैं भी तुम लोगों के साथ चलूँ।

सभी साथी मोटर पर आकर लद जाते थे, इससे आराम से चढ़ने का मज़ा न मिलता—इसी से गणेश ने सोच रक्खा था कि ग्रहण के दिन शिवपूजन को लेकर मेले का दृश्य देखेगा। शिवपूजन के मुँह से स्वयं-सेवक बनने की बात निकलते ही गणेश बोल उठा—"अब तो भरती बन्द हो गई; मैं जाकर लौट आया।"

अगर कोई उस समय इस बात की जाँच करता तो गणेश को. झुठाई पकड़ जाने से, शरमाना पड़ता। मगर उस समय सभी अपनी-अपनी ड्यूटी में लगे थे, इससे कोई बहस करना नहीं चाहता था। फलतः गणेश का मनोरथ पूरा हुआ अर्थात् शिवपूजन की भरती स्वयंसेवकों में नहीं हुई।

ङ

शिवपूजन ग्रहण लगने के बाद से ही मोटर पर इधर से उधर घूम रहा था। पुलिस लोगों और सवारियों की आवाजाही का कड़ा नियन्त्रण कर रही थी। शिवपूजन ने मदनपुरा में एक गली के सामने आकर देखा कि एक दूकान के सामने लोगों की बड़ी भीड़ जमा है। यहाँ तो गङ्गा-किनारे जाने का रास्ता नहीं है, तब यहाँ इतनी भीड़ क्यों ! शिवपूजन धीरे-धीरे मोटर आगे बढ़ाने लगा। साथ में सिर्फ़ गणेश था। उसने सोचा, कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई है।

आगे बढ़कर शिवपूजन ने देखा कि दूकान के पटरे पर एक बड़ी ही सुन्दर युवती लेटी हुई है। उसके बाल बिखरे हुए हैं। उसके मुँह पर पानी के छींटे दिये जा रहे हैं। उसको ग़श आ गया है।

शिवपूजन के मोटर से उतरते ही दो-एक आदमी कह उठे—"यह मोटर आ गई, मोटर। इसी में बिठाकर अस्पताल ले जाते तो अच्छा होता।" किसी ने कहा—"कहीं इन्हीं लोगों के घर की औरत न हो।" मगर शिवपूजन का रङ्ग ढङ्ग देखकर जब लोगों ने समझ लिया कि युवती इन लोगों के घर की नहीं है, तो चारों ओर से लोग कहने लगे बाबू साहब, ए बाबू साहब! और साथ ही प्रश्न आरम्भ हुआ—यह कौन है? यात्री तो नहीं जान पड़ता। आपका कहाँ मकान है साहब! उस भीड़-भड़क्के में ज़रा भी न घबराकर शिवपूजन आगे बढ़ा और उसने आँखों से जो कुछ देखा, उससे उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। इतनी सुन्दरता मनुष्य में भी हो सकती है! शिवपूजन ने तुरन्त युवती की नाड़ी पर हाथ रखकर गम्भीर स्वर से कहा—"नाड़ी है।" भीड़ में से लोग बोल उठे—"डाक्टर हैं, डाक्टर, अच्छा हुआ।" भीड़ की ओर देखकर शिवपूजन ने कहा—"इस स्त्री का मकान कहाँ है?"

"मालूम नहीं साहब।"

"यहाँ कोई इसका अपना आदमी है?"

"कोई तो नहीं दिखाई देता।"

"यह कितनी देर से इस तरह पड़ी हुई है?"

"यह तो मालूम नहीं। सड़क पर पड़ी थी, उठाकर पटरे पर रख दी गई है। पुलिस को ख़बर देने की बात हम लोग सोच रहे थे, इतने में आप—"

शिवपूजन के कान में यह भी भनक पड़ी—कौन जात है, किस क़िस्म की औरत है, कौन जाने। एक ओर से कुछ बेहूदा इशारा भी हुआ। शिवपूजन ने युवती के मुँह की ओर देखा। चेहरे पर कैसी चमक है, कैसा दिव्य भाव है। उसने मन में कहा—ऐसी हो नहीं सकती। उसने पुकारा—"गणेश!"

गणेश ने सामने आकर कहा—"क्या?"

"चलो, इसको मोटर पर रखकर अस्पताल ले चलें। नहीं तो मर जायगी।"

हाँ या नहीं. कोई बात गणेश के मुँह से तुरत नहीं निकली। वह अभी तक एकटक आश्चर्य से उस सौन्दर्य की प्रतिमा को देख रहा था। शिवपूजन की बात पर उसका ध्यान भंग हुआ। उसने कहा—"अच्छा।"

इसके बाद उस चकित-स्तम्भित लुब्ध जनता के बीच से उस रूपवती युवती को दोनों मित्रों ने उठाकर मोटर पर चढ़ाया और फिर मोटर चला दी।

उस समय वहाँ कुछ ग़ुलगपाड़ा हुआ। रास्ते भर एक प्रश्न शिवपूजन को डावाँडोल करता रहा। क्या करना चाहिए! वह जब मारवाड़ी अस्पताल के बाद कबीरचौरा अस्पताल को भी छोड़कर आगे बढ़ा तो गणेश ने पूछा—"कहाँ चलोगे! कौड़िया अस्पताल को! कबीरचौरा अस्पताल में नहीं!" शिवपूजन कुछ शरमाया। पहले उसे कोई जवाब नहीं सूझा। फिर किसी तरह शर्म को दबाकर उसने कहा—'शरीफ़ घर की लड़की जान पड़ती है, बिना समझे-बूझे सीधे अस्पताल ले चलें! इससे तो यह अच्छा होगा कि अपने घर पर ले चलें। डाक्टर बुलाकर और नर्स रखकर दवा-दरपन का बन्दोबस्त कर देंगे। उसके बाद आराम हो जाने पर पता पूछकर उसके घरवालों को ख़बर दे देंगे।"

घर पर आकर शिवपूजन ने सेवा-शुश्रूषा के प्रबन्ध में कुछ उठा नहीं रक्खा। डाक्टर बुलाया गया; नर्स, टहलुई भी आई। मकान की दूसरी मञ्ज़िल मरीज़ के लिए छोड़ दी गई। फलतः सहपाठियों का भी ऊपर जाना बन्द हुआ।

डाक्टर देखकर कह गया—"किसी प्रकार के मानसिक धक्के के कारण ऐसी हालत हो गई है, बिलकुल बेहोश नहीं है। कभी-कभी होश होता है, फिर बेहोश हो जाती है। इसलिए ख़तरे की कोई बात नहीं जान पड़ती।"

शिवपूजन ने नर्स के साथ युवती के सिरहाने बैठकर सारी रात जागकर बिताई। गणेश का रहना सम्भव नहीं था; क्योंकि प्रेम के पहले ब्याह होने पर भी उसकी स्त्री मौजूद थी और नवोढ़ा थी। इसलिए—ख़ैर।

युवती के सिरहाने बैठकर शिवपूजन न जाने क्या क्या सोच रहा था। मन को कल्पना के उड़नखटोले पर चढ़ाकर न जाने किधर दौड़ा दिया था। इन मुंदे हुए नयन-पल्लवों के नीचे न जाने क्या क्या रहस्य छिपा हुआ है! कब उसका पता लगेगा!

शिवपूजन शय्या पर पड़ी हुई मूर्च्छिता की ओर बार बार सतृष्ण दृष्टि से देखने लगा।

दस बजे दिन में युवती ने आँखें खोलकर ताका। नर्स ने आकर बेदाने का रस चम्मच से उसके मुँह में डाल दिया। युवती अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से करुणाजनक भाव दरसाते हुए नर्स की ओर देखने लगी। कुछ देर बाद उसने पूछा—"मैं कहाँ हूँ?"

नर्स ने उसको ज़्यादा बोलने से मना करके कहा—"आप अच्छी जगह पर हैं, कुछ फ़िक्र मत कीजिए।"

युवती ने कहा—"मेरे माँ-बाप कहाँ हैं?" नर्स ने इस बात का जवाब नहीं दिया। वह उस विषय में विशेष कुछ नहीं जानती थी। उसने यह भी नहीं सुना था कि वह रास्ते से उठाकर लाई गई है और इस घर की कोई नहीं है। थोड़ी ही दूर पर शिवपूजन आराम-कुर्सी पर बैठकर एक पुस्तक पढ़ रहा था। नर्स ने एक बार उसकी ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा। वह नज़दीक आकर खड़ा हो गया।

युवती ने पूछा—'यह आपका मकान है?"

शिवपूजन ने कहा—"हाँ।"

युवती बोली—"मेरे माँ-बाप कहाँ गये?"

शिवपूजन ने कहा—"मुझे तो मालूम नहीं। अब पता लगाकर बताऊँगा। आप घबराइएगा मत। यहाँ आपके लिए कुछ खटका नहीं है।"

युवती चुप होकर बिछौने पर पड़ी रही। सामने खिड़की खुली थी। उसी के रास्ते उसने अपनी अलसाई हुई दृष्टि दूर तक बाहर फैला दी। उस धूप में बीच-बीच में दो-एक पंछी उड़ते दिखाई देते थे। आसमान की ओर देखते हुए वह न जाने क्या सोचने लगी।

× × × ×

आठ-दस दिन में युवती चलने-फिरने लगी। इतने दिन शिवपूजन ने मित्रों का संसर्ग छोड़ दिया था। रात-दिन दूसरी मञ्ज़िल पर ही पास की एक कोठरी में पड़ा रहता; बीच-बीच में इस कमरे में भी आ बैठता।

दोपहर को युवती बिछौने पर लेटी थी। शिवपूजन ने कमरे में आकर पूछा—"आपकी तबीयत अच्छी है?"

युवती सिटपिटाकर उठ बैठी। बोली—"हाँ।"

शिवपूजन ने पूछा—"शरीर में कुछ ताक़त आ रही है?"

"हाँ।"

"आपका मकान कहाँ है? आपके घर पर कौन कौन हैं? घर छोड़कर रास्ते में—"

युवती सिसक-सिसककर रोने लगी। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। उसके घर जाने का रास्ता किधर है! इस अपरिचित स्थान में, इतने से घेरे में उसका चित्त अधीर हो रहा था। आज उसके भाग्य में क्या लिखा है! वहाँ अब क्या हो रहा है? कौन कहाँ किस तरह से है? क्या किया जा रहा है! उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

शिवपूजन ने पूछा—"आपके पिता का क्या नाम है?"

"पण्डित शीतल उपाध्याय।"

"घर कहाँ है?"

लड़की ने गाँव का नाम बतलाया।

"अच्छा" कहकर शिवपूजन उस कमरे से चला गया। मेज़ पर लेटर पेपर का पैड पड़ा था। उसमें से एक काग़ज़ पर वह चिट्ठी लिखने बैठा। लिखा—

श्रीमान् महाशय, प्रणाम।

इतना लिखने के बाद वह ज़रा रुक गया। यह क्या कर रहा हूँ! इस चिट्ठी के लिखने का मतलब क्या है! अपनी आँखों के सामने से दुनिया के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श की सारी अनुभूति को दोनों हाथों से हटाने जा रहा हूँ! अपनी आँखों का दीपक बुझा देने बैठा हूँ! यह बात चित्त में आते ही उसका सारा हृदय बाणविद्ध हरिण की तरह छटपटाने लगा। नहीं जी, यह चिट्ठी नहीं लिखी जायगी, लिखते नहीं बनेगा। यह तो अपना मृत्यु-बाण अपने ही हाथ से दूसरे के हाथ में थमा देना है।

वह न जाने क्या क्या सोचने लगा। यह युवती उसकी कोई नहीं है। यह किसी दिन हृदय के पास आवेगी कि नहीं, यह भी मालूम नहीं है। उससे जान नहीं, पहचान नहीं, किसी दिन दिल की कोई बात भी नहीं कही गई। तब! तब भी बड़ा आनन्द है। एक ही छत के नीचे दोनों आदमी हैं तो! पास ही पास तो हैं! हाथ से न पाऊँ, हाथ के पास तो है; यह सोचकर भी कितना आनन्द मिल रहा है। यह आनन्द क्या छोड़ने लायक़ है! तो भी चिट्ठी न लिखूँगा तो क्या करूँगा! किसी भलेमानस के घर की युवती को ज़बरदस्ती अपने घर में बन्द करके रख तो सकता नहीं।

इससे ब्याह कर लिया जाय तो कैसा! अच्छा तो है। मगर यह तो पूछा नहीं कि तुम्हारा ब्याह हुआ है कि नहीं। शायद नहीं हुआ है। ब्याह हुआ रहता तो माँग में सेंदुर दिखाई देता। तो शिव-पूजन की आशा दुराशा नहीं भी हो सकती। अहा! क्या ऐसा होगा! क्यों नहीं होगा! कहाँ यह बन्दा इस मकान के एक कोने में पड़ा था और कहाँ वह मदनपुरा की सड़क। मेरा भाग्य जब मुझे उस दिन वहाँ ले गया, तब क्या इसमें उसका कोई उद्देश्य नहीं था! था क्यों नहीं! इसी को भवितव्यता कहते हैं, होनहार कहते हैं। उसकी गति को कोई रोक नहीं सकता।

आशा की उमङ्ग में विभोर होकर शिवपूजन फिर उस युवती के पास आया। बोला—"मैं एक बात सोच रहा था। आपका ब्याह हो गया है न ? ससुराल कहाँ है ? आपके पति को ही चिट्ठी......"

शिवपूजन ने यह बात बहुत डरते-डरते ही कही। वह समझता था कि जवाब यही मिलेगा कि ब्याह नहीं हुआ है। अचानक इतनी बड़ी लड़की से ब्याह हुआ है कि नहीं, यह पूछना सभ्योचित नहीं—यही सोचकर उसने ज़रा घुमा-फिराकर प्रश्न किया था। परन्तु उत्तर में जब उसने 'हाँ' सुना, ब्याह हो गया है और पति जीवित हैं, तब उसका मन क्षणभर में आसमान से एकदम किसी पहाड़ पर गिरकर चकनाचूर हो गया। हाय, हाय ! आशा का छोटा सा दीपक आँधी के एक ही झोंके में बुझ गया।

कुछ देर के बाद शिवपूजन ने सँभलकर कहा—"देखिए, आप इतने दिन से मेरे घर में हैं, आपके अपने घर न लौटने से चारों ओर शोर-गुल मच गया होगा; क्योंकि गँवई है। इस हालत में आपके पिता को चिट्ठी लिखने से वह शोर-गुल और बढ़ तो न जायगा ? इसके बदले, आप समझती हैं कि नहीं, स्वयं जाकर सब हाल उनको चुपके-चुपके समझा देना क्या अच्छा न होगा ? नहीं तो तरह-तरह की बातें...।"

इतना कहकर शिवपूजन चुप हो गया। फिर दो बार खाँसकर उसने कहा—"समझती हैं न, इसमें कुछ मेरी भी तो ज़िम्मेदारी है ! इतने दिन कोई ख़बर नहीं दी गई, आज अचानक......तो क्या काशी में आपका ऐसा कोई सगा सम्बन्धी नहीं है जो......।"

युवती सोचने लगी। देर तक सोचती रही और शिवपूजन एकटक उसकी ओर देखता रहा। यह देखना और कितने समय के लिए है। उसके जीवन-मार्ग से यह अभी सर्वदा के लिए हट जायगी। उससे फिर कभी भेंट होने की सम्भावना न रहेगी।

युवती ने धीमी आवाज़ से कहा—"काशी में मेरे एक भाई पढ़ते हैं। अगर ढूँढ़कर उनको ला सकें तो शायद...... ।"

धड़कते कलेजे से शिवपूजन ने कहा—"उनका नाम क्या है?"

"धनराजसिंह।"

"सिंह! आपके भाई हैं?"

"गाँव के भाई हैं। वे हमारे गाँव के ज़मींदार के लड़के हैं। हमारे मकान से सटा हुआ उनका मकान है। वे क्षत्रिय होने पर भी अपने भाई के समान हैं।"

"किस कालेज में पढ़ते हैं? कहाँ रहते हैं?"

"यह तो मैं नहीं जानती।"

शिवपूजन ने कहा—"अच्छा, मैं अभी पता लगाता हूँ। ज़मींदार के लड़के हैं न? कालेज में पढ़ते हैं? तब कालेज में ही पता लगेगा। हाँ, मिल जायँगे तो उनसे क्या कहूँगा? यही कहूँगा कि पण्डित शीतल उपाध्याय की लड़की! आपका नाम?"

"मेरा नाम सरस्वती है।"

शिवपूजन घर से निकला। सरस्वती उदास मन से आकाश की ओर देखती हुई खिड़की के पास आ खड़ी हुई। वह सोचने लगी—शिवपूजन की यह बातचीत! घर में कोई स्त्री नहीं है फिर भी सब तरह का इन्तज़ाम है। इस आदमी का रङ्ग-ढङ्ग कुछ समझ में नहीं आता।

च

सरस्वती का पति बालगोविन्द काशी के म्युनिसिपल आफ़िस का क्लर्क था। हालत वैसी अच्छी नहीं थी और आमदनी भी कम थी। इससे वह ब्याह करने से बराबर इनकार करता रहा। मगर उसकी माता यशोदा ने हठ किया कि ब्याह करना ही होगा। लड़का ब्याह नहीं करेगा। यह भी कोई बात है! जब सबके लड़के ब्याह कर रहे हैं तब बालगोविन्द ही क्यों न करेगा? पर बालगोविन्द बराबर इनकार ही करता रहा। माँ और बेटे में इस प्रसङ्ग को लेकर प्रायः विवाद हुआ करता।

[illegible]

नहीं होती।'

[illegible]

चौका की सास-ननद के शासन से पीड़ित बहुएँ यह कहकर बालगोविन्द की माता यशोदा का पटतर देने लगी थीं कि भगवान् सास दे तो ऐसी दे। परन्तु दुर्भाग्यवश यशोदा अपनी इस नेकनामी को ज़्यादा दिन क़ायम न रख सकी। कई वर्ष बीत जाने पर भी जब सरस्वती सास की, पोता खेलाने की, साध पूरी न कर सकी तब यशोदा को धीरे-धीरे इस बहू से वंश चलने की आशा घटने लगी। तरह-तरह की जड़ी-बूटी, यन्त्र-मन्त्र, झाड़-फूँक तथा देवी-देवताओं की मनौती से भी जब उसकी कामना पूरी न हुई तब वह तिवारी-वंश में आगे के लिए पिण्ड-पानी देने-वाला पैदा करने के लिए अधीर होकर अपने लड़के का दूसरा ब्याह करने का मनसूबा बाँधने लगी। इतने में बालगोविन्द पछाँह में एक बड़ी नौकरी पाकर दूर चला गया।

वहाँ पहुँचने के दस ही पन्द्रह दिन बाद बालगोविन्द एक बएक सख़्त बीमार पड़ गया। लड़के की बीमारी की ख़बर पाकर माता यशोदा इतनी घबराई कि झटपट पतोहू को मायके भेजकर गाँव के एक गोतिया के साथ लड़के के पास जा पहुँची। उस समय बालगोविन्द का स्वास्थ्य कुछ सुधर रहा था। उसे दफ़्तर की तरफ़ से ही सपरिवार रहने लायक़ एक मकान मिला था। यशोदा को यह छोटा-मोटा बँगलानुमा साफ़-सुथरा मकान और नदीतटवाला स्थान इतना पसन्द आया कि बालगोविन्द के अच्छे हो जाने पर भी उसको अपने गाँव लौट जाने की इच्छा नहीं हुई। वह गोतिया को बिदा करके वहीं रह गई और पुत्रवधू को बुलाने के लिए पुत्र से आग्रह करने लगी। बालगोविन्द ने यह वादा करके माता को शान्त किया कि जल्द ही छुट्टी लेकर जाऊँगा और लिवा लाऊँगा।

इस विदेश में बालगोविन्द का मन भी अकेले नहीं लगता था। सरस्वती से दूर आ पड़ने से उसको जो अपार कष्ट था वह यहाँ उसको बहुत सता रहा था। सुदूर के प्रवास में अत्यन्त प्रिय जन को बहुत दिनों से न देखने के कारण बालगोविन्द बहुत बेचैन था। सरस्वती को न

देखने का दु:ख, उसके वियोग की असह्य वेदना तो बालगोविन्द को अधीर बना ही रही थी ऊपर से हर तीसरे दिन सरस्वती के हाथ की लिखी हुई जो चिट्ठी आती थी—और वह चिठ्ठी उसके इस हित-मित्र-विहीन दूर देश में चित्त के लिए एकमात्र ढाढ़स और अवलम्ब थी—वह भी प्राय: दो सप्ताह से नहीं आती। सरस्वती ने अपनी अन्तिम चिट्ठी में लिखा था कि हम लोग चन्द्रग्रहण पर गङ्गा नहाने काशी जा रहे हैं, चार-पाँच दिन आप मुझे कोई चिट्ठी मत भेजिएगा। काशी से लौट आने पर जब मैं आपको चिट्ठी लिखूँगी तब जवाब दीजिएगा। बालगोविन्द उस चिट्ठी की राह उत्सुकता से देख रहा था। चार-पाँच दिन की जगह दो सप्ताह बीत गये तो भी कोई समाचार न मिलने से बालगोविन्द अधीर हो उठा। पहले सरस्वती पर उसे बड़ा क्रोध आया कि वह चिट्ठी क्यों नहीं भेज रही है, क्या तीन दिन पर भी एक चिट्ठी नहीं भेज सकती? अगर घर न लौटी हो तो काशी से भी तो चिट्ठी भेज सकती थी। उसे क्या नहीं मालूम है कि उसकी चिट्ठी मिलने में देर होने से मैं कितना व्याकुल हो जाता हूँ। लेकिन बालगोविन्द अपने प्रण की रक्षा न कर सका। जब देखते-देखते और दो सप्ताह बीत गये तब बालगोविन्द को सरस्वती के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में चिन्ता हुई। ऐसा तो कभी नहीं हो सकता कि जो व्यक्ति हर तीसरे दिन पत्र भेजता था वह आज एक महीने से चुप बैठा रहे। ज़रूर सरस्वती को कोई रोग व्याधि हुई है। अब बालगोविन्द से रूठे रहा नहीं गया। उसने उसी दिन सरस्वती को एक चिट्ठी लिख भेजी।

चिट्ठी के उत्तर आने का निर्धारित दिन बीत गया। जब सरस्वती की ओर से कोई जवाब नहीं आया तब बालगोविन्द घबराया। उसे क्या हो गया है? एक महीना बीत गया और कुछ ख़बर नहीं मिल रही है। वह सोच रहा था कि ससुर को चिट्ठी लिखूँ कि नहीं। इतने में उस दिन की डाक से उसके नाम एक पत्र आया। लिखावट अपरिचित थी मगर डाक की मुहर ससुराल की ही थी। बालगोविन्द झटपट लिफ़ाफ़ा फाड़कर चिट्ठी पढ़ने लगा—

"प्रिय महाशय,

बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि आपकी पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी हमारे गाँव के ज़मींदार के पुत्र श्री घनराजसिंह के साथ गत चन्द्रग्रहण के अवसर पर लापता हो गईं। आपके ससुर ने शायद यह कुसमाचार आपसे छिपा रक्खा है मगर चूँकि सरस्वती देवी न्यायतः धर्मतः आपकी विवाहिता पत्नी हैं इसलिए कुसमाचार होने पर भी सबसे पहले यह बात आपको विदित होनी चाहिए। यह सोचकर आपको पत्र द्वारा सूचित करता हूँ। जैसा उचित जान पड़े वैसा कीजिएगा। इति।"

चिट्ठी पढ़कर बालगोविन्द को चक्कर सा आ गया। मानो किसी ने छाती में ज़ोर से कटार भोंक दी। वह दोनों हाथों से सिर थामे, मेज़ पर कुहनी रक्खे, खुली चिट्ठी की ओर पागल की तरह देर तक देखता रहा।

यशोदा को समधियाने का समाचार बालगोविन्द से मिलता था, इधर बहुत दिनों से पुत्र-वधू का कुछ हाल न मिलने से वह भी कुछ चिन्तित हो रही थी। वह रोज़ लड़के से कहती कि डाकघर में जाकर देखो, बहू की चिट्ठी आई होगी। बालगोविन्द जाता मगर डाकख़ाने मे ख़ाली हाथ लौट आता। आज उसके हाथ में एक चिट्ठी देखकर माता ने समझा कि बहू की ही चिट्ठी होगी। हाल जानने के लिए जिस समय वह बालगोविन्द के कमरे में आई उस समय बालगोविन्द कुर्सी पर बैठा रहने पर भी थर-थर काँप रहा था। उसका चेहरा बिलकुल उतर गया था। बेटे की शकल-सूरत देखकर यशोदा घबरा गई। यह समझने में उसे देर न लगी कि कोई बहुत बुरी ख़बर आई है। मगर वह क्या है? तो क्या बहू का कुछ ख़ता नाग़ा हुआ है? उसने घबराकर बेटे से पूछा—"तुम इस तरह क्यों हो रहे हो? क्या तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है? वह किसकी चिट्ठी है? बहू के बारे में कोई ख़राब ख़बर मिली है क्या?"

बालगोविन्द के मुँह से कोई बात न निकली। वह सन्न सा बना रहकर अपनी माता की ओर एकटक देखता रहा। उसके बदन से पसीना निकल रहा था। यशोदा, झट पास जाकर आँचल से पुत्र का मुँह पोंछकर पंखे से हवा करती हुई बोली—"क्या हुआ बेटा! मुझे बताओ। तुम इस तरह मेरी ओर टकटकी क्यों लगाये हुए हो? मुझे बड़ी घबराहट हो रही है।"

बालगोविन्द ने धीरे-धीरे मेज़ पर से चिट्ठी उठाकर माता के हाथ में दी। यशोदा ने कई बार चिट्ठी उलट-पुलटकर बेटे को लौटाते हुए कहा—"मैं क्या पढ़ना जानती हूँ बच्चा! तुम ज़रा पढ़कर सुनाओ मेरे लाल! क्या ख़बर है, जानने के लिए मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है।"

बालगोविन्द ने दारुण दुःख के साथ शोकाकुल स्वर से माता को संक्षेप में बात बता दी। माता ने थोड़ी देर सोचकर कहा—"बेटा! मेरी समझ में यह किसी दुश्मन की कारसाज़ी है। मेरी पतोहू सावित्री के समान सती है। वह क्या कभी ऐसा कर सकती है! तुम अपने ससुर को चिट्ठी भेजकर अच्छी तरह पता लगाओ। इस गुमनाम चिट्ठी को पढ़कर मन को मत बिगाड़ो।"

माता की सलाह बालगोविन्द को उचित जान पड़ी। उसने उसी समय ससुर के नाम तार भेजा।

छ

शिवपूजन धनराज की खोज में निकला तो अभी तक नहीं लौटा। सरस्वती उतावली सी होकर उसके लौटने की बाट देख रही थी। आज भारी दुश्चिन्ता उसके दुर्बल शरीर-मन को बेचैन सी कर रही थी। अगर यह आदमी धनराज भैया का पता न पावे तो क्या होगा? मैं किस तरह घर जाऊँगी? कौन मुझे ले जायगा? माँ-बाप सभी मेरे लिए न जाने कितने चिन्तित होंगे। चारों ओर न जाने कितनी खोज हो रही होगी।

सरस्वती मन ही मन जोड़ने लगी कि वह कितने दिनों से इस मकान में है। हिसाब लगाकर बेचारी चौंक पड़ी। ओह! प्रायः आठ दिन से मैं एक अनजान, अपरिचित पराये आदमी के आश्रय में पड़ी हूँ। राम! राम! कितनी शर्म की बात है। गाँव के लोग सुनकर क्या कहेंगे? भले घर की लड़की, सद्गृहस्थ की स्त्री इतने दिन से काशी में एक ऐसे अनजान आदमी के घर में टिकी हुई है जो न तो उसका कोई रिश्तेदार है, न सगा-सम्बन्धी और गाँव का ही, जिसके घर में कोई औरत तक नहीं है। सरस्वती ने जब अपनी इस असहाय अवस्था की शोचनीय दशा को अपने मानस-पट पर देखा तो वह काँप उठी। इस डर के मारे उसका कलेजा धड़कने लगा कि कितना बड़ा कलङ्क लग सकता है, कितनी बड़ी बदनामी हो सकती है। न जाने कितनी चिन्ता और शर्म की बात साही के काँटे की तरह उसके सारे शरीर में गड़ने लगी। नहीं, नहीं, अब मैं एक दिन भी यहाँ नहीं रहूँगी। धनराज भैया के मिल जाने पर आज रात को ही मैं उनके साथ अपने गाँव को चली जाऊँगी। लेकिन अगर धनराज भाई न मिले, तब! तब क्या होगा! तैरना न जाननेवाले आदमी के अचानक अथाह जल में पड़ जाने की तरह सरस्वती का कलेजा धड़क उठा। वह कुछ भी निश्चय न कर पाती थी कि इतने में शिवपूजन आ गया। उसने सरस्वती को पुकारकर कहा कि आज धनराजसिंह का कुछ पता नहीं लगा मगर आशा है कि कल-परसों तक उनका पता लगा लूँगा। गणेश, गोकुल आदि अपने सब मित्रों से कह आया हूँ। कल जैसे होगा वैसे धनराजसिंह का पता वे लोग लगाकर ही छोड़ेंगे। आप कुछ फ़िक्र मत कीजिए। अगर आप बता सकतीं कि वे किस कालेज में पढ़ते हैं तो आज ही उनको पकड़ लाता।

सरस्वती ने उदास होकर कहा—"यह तो मैं ठीक-ठीक नहीं जानती मगर धनराज भैया के मुँह से सुना था कि वे काशी के किसी आर्यसमाजी कालेज में पढ़ते हैं।"

शिवपूजन ने हँसकर कहा—"अच्छा, समझ गया। यह बात आपने अगर पहले कही होती तो आज मुझे इधर-उधर भटकना न पड़ता। कल जाकर उनको ढूँढ़ लूँगा।"

सरस्वती ने सिर नीचे करके आँचल का एक कोना उँगली में लपेटते हुए कहा—"आप मेरे लिए कितना कष्ट उठा रहे हैं! मैं आपसे इस जीवन में उरिन न हूँगी।"

सरस्वती की इस बात से शिवपूजन के हृदय को कुछ तृप्ति हुई। उसने अपनी युवावस्था को धन्य और सार्थक समझा। उसने प्रसन्न होकर कहा—"नहीं, नहीं, कष्ट क्या है। ऐसी अवस्था में सभी लोग आपकी सहायता करते; बल्कि मेरा ही सौभाग्य समझिए कि पहले मैं ही आपके काम आया। जो हो, अब आपको सकुशल आपके घर पहुँचा दूँ तो सब परिश्रम सार्थक हो जाय। आपको न जाने यहाँ कितना कष्ट हो रहा है। यहाँ हमारे घर की कोई स्त्री नहीं है, सिर्फ़ नौकर-मज़दूरनी ही हैं। इससे आपकी कुछ भी ख़ातिर नहीं हो रही है।"

सरस्वती ने धीरे-धीरे कहा—"इससे बढ़कर ख़ातिर मेरी ज़िन्दगी में और कहीं नहीं हुई।"

शिवपूजन का हृदय हुलसित हो गया। वह क्षण भर के लिए यह बात भूल गया कि सरस्वती विवाहिता है और उसका पति जीवित है। इस अनुपम रूपवती युवती को रास्ते से उठाकर जब से ले आया तब से शिवपूजन अपनी जवानी की तूलिका से प्रतिदिन कल्पना के जो रंगीन चित्र जीवन के नये चित्रपट पर अङ्कित करने लगा था वे सब मानो अचानक सजीव होकर उसकी आँखों के सामने बायस्कोप के चित्र की तरह घूमने लगे।

सरस्वती ने गद्‌गद कण्ठ से फिर कहा—"मैं आपकी यह नेकी ज़िन्दगी भर नहीं भूलूँगी।"

शिवपूजन की तरुण अवस्था का तरल रक्त-स्रोत अचानक चञ्चल सा हो गया। उसके मुँह से अनायास यह बात निकल पड़ी—"मैं भी

शायद इस ज़िन्दगी में आपको कभी भूल न सकूँगा!" यह बात कहने के साथ ही शर्म के मारे वह गड़ सा गया। वह स्वयं भी समझ गया कि सरस्वती के कृतज्ञता-प्रकाश के उत्तर में उसके मुँह से बिलकुल बेढङ्गी और बे सिर-पैर की बात निकल गई। इससे वह और कुछ नहीं कह सका; अपराधी की तरह सिटपिटाकर सिर नीचे किये खड़ा रहा।

दीवार-घड़ी में टन टन करके रात के दस बज गये। सरस्वती ने कहा—"बातचीत करते करते बहुत रात चली गई। आपने अभी तक भोजन नहीं किया। जाइए, कपड़ा-लत्ता उतारकर खा-पी लीजिए।"

मानो शिवपूजन की बला टल गई। वह झट उस कमरे से निकल कर नीचे उतर गया। सरस्वती ने ऊपर से सुना कि शिवपूजन नीचे जाकर अपने सब नौकर-चाकरों को बुलाकर सख़्त ताकीद कर रहा है कि इस स्त्री के खाने-पीने, सोने-बैठने में ज़रा भी कोताही न होने पावे। सभी लोग सावधान रहें। वह जो हुक्म दे, फ़ौरन उसकी तामील की जाय। सब लोग इस बात का ख़याल रक्खें कि उसकी तबीयत ठीक नहीं है। इत्यादि।

ज

शिवपूजन आज जल्दी भोजन कर दस बजे ही कालेज चला गया। जाते समय मज़दूरनी से सरस्वती को यह कहला भेजा कि कालेज से लौटते समय धनराज को साथ लेता आऊँगा। सरस्वती ने उन लोगों की बाट जोहने में सड़कवाली खिड़की पर बैठकर सारी दुपहरिया बिता दी। एक, दो करके जब चार बज गये तब सरस्वती उतावली हो गई। आज इनको इतनी देर क्यों हो रही है। रोज़ तो दो ही तीन बजे तक आ जाते थे। तो क्या धनराज भैया से मुलाक़ात नहीं हुई? क्या धनराज भैया आज कालेज नहीं गये? न भी गये हों। आश्चर्य नहीं कि किसी काम से अचानक गाँव चले गये हों। अगर ऐसा ही हुआ हो तो अब क्या

होगा ! अगर धनराज भाई सचमुच काशी में न हों ! सरस्वती खिड़की खोलकर एकटक सड़क की ओर देखती रही। उस समय उसका दिल घोंसले से गिरे हुए चिड़िया के बच्चे की तरह छटपटा रहा था। धीरे-धीरे शाम हो गई। सड़क पर बिजली की रोशनी हो गई। मज़दूरनी ने आकर पूछा—"हाँ बहन, आज क्या आप बाहर-भीतर नहीं जायँगी, कपड़ा-लत्ता नहीं बदलेंगी ? शाम तो हो गई।"

सरस्वती ने उदास भाव से कहा—"नहीं दाई, आज पानी बदन पर नहीं डालूँगी; जी अच्छा नहीं है।"

मज़दूरनी ने कहा—"तो आइए आपका माथ बाँध दूँ। आज कई दिन से बाल खुले रहकर लटें बँध गई हैं।"

सरस्वती ने बेमन से कहा—"बाँध दो।"

घण्टे भर मिहनत करके मज़दूरनी ने सिर के बाल सँवारकर जूड़ा बाँधने के बाद सामने आईना रक्खा तब सरस्वती ने चौंककर कहा—"अरे दाई! सेंदुर !"

दाई ने हँसते-हँसते कहा—"यह लीजिए। आपके लिए सब कुछ जुटा रक्खा है।"

उसने आँचल की गाँठ खोलकर सेंदुर की एक डिबिया निकाली। सरस्वती ने जब माँग में सेंदुर लगाया उस समय और एक आदमी की याद ने उसके चित्त को व्याकुल कर दिया।

मज़दूरनी के चले जाने पर सरस्वती बैठे-बैठे सोचने लगी। यह उसके चित्त का छिपा हुआ सोच-विचार था। आठों पहर उसके दिल में हुआ करता था मगर शर्म के मारे मुँह खोलकर किसी से कह नहीं सकती थी। इस अनजान नगरी में ऐसी एक भी सङ्गिनी नहीं जिससे वह दिल खोलकर बात कर सके। आज पति को पत्र भेजने की बात न सिर्फ़ याद आई, उसके लिए चित्त व्यग्र हो उठा। कितने दिन से चिट्ठी नहीं लिखी। यह बात पहले भी याद आई है मगर किससे पत्र लिखवावेगी। घर पर छोटा भाई पता लिख देता था।

यहाँ शिवपूजन से उनका पता लिखवाने में उसको बड़ी शर्म मालूम होने लगी। कहीं वह पूछ न बैठे कि यह किसका पता है और उसको पति का नाम ही कैसे बतलावेगी। मगर अब लजाने से काम नहीं चलेगा।

सरस्वती कमरे में चिट्ठी लिखने का सामान ढूँढ़ने लगी मगर कहीं न तो काग़ज़ और दावात-क़लम मिली न कोई पेन्सिल ही। सरस्वती की बीमारी के समय नर्सों ने आकर उस कमरे से शिवपूजन की मेज़-कुर्सी, काग़ज़, पुस्तकों की आलमारी आदि सब कुछ दूसरी कोठरी में भेजवा दी थी।

सरस्वती को याद आया कि शिवपूजनसिंह दिनरात पास की कोठरी में ही तो बैठकर लिखते-पढ़ते हैं, ज़रूर काग़ज़-क़लम होगी। पास के कमरे में जाकर उसने देखा कि सामने ही शिवपूजन की बड़ी सी मेज़ है। उसपर बिल्लौरी शीशे की दावात और क़लम रक्खी हुई है। एक तरफ़ लेटर-पेपर दबाया हुआ है। चिट्ठी लिखने बैठकर सरस्वती ने देखा कि मेज़ पर पड़े हुए ब्लाटिंग पेपर पर नीली पेन्सिल से सरस्वती के पिता उपाध्यायजी का नाम-पता लिखा हुआ है और चारों ओर उसका नाम भी न जाने कितनी वार तरह-तरह से लिखा है।

बालगोविन्द को चिट्ठी लिखने आकर अब सरस्वती सोचने लगी—उनको ख़बर देकर उतनी दूर से बुलाने के बदले बाबूजी को ही क्यों न चिट्ठी भेजूँ। यही अच्छा होगा। हमारा गाँव काशी से बहुत दूर नहीं है। बाबूजी को चिट्ठी लिखने से वे दो ही तीन दिन में आकर मुझे लिवा ले जायँगे। पछाँह में उनके पास चिट्ठी जाने और उनके आने में अधिक दिन लग जायँगे। तब तक मैं यहाँ नहीं रह सकती। तब सरस्वती उपाध्यायजी को ही चिट्ठी लिखने लगी। प्रायः आधी चिट्ठी लिख चुकी थी, जिसमें बताया था कि किस तरह शिवपूजनसिंह नाम के एक अपरिचित सज्जन उसे बेहोशी की हालत में रास्ते से अपनी मोटर पर चढ़ाकर अपने घर ले आये और इलाज कराया। यहीं तक लिख चुकी

थी कि इतने में शिवपूजन की उस दिन की बातें उसे याद आ गईं। शिवपूजन ने कहा था कि तुम्हारे इतने दिन घर न लौट जाने से ज़रूर तुम्हारे गाँव में होहल्ला मचा होगा। ऐसी दशा में तुम्हारे पिता को पत्र भेजने से अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इससे यह अच्छा होगा कि तुम स्वयं जाकर उन लोगों को समझा देना नहीं तो........। जिस खटके का उसने इशारा भर किया है उसका ख़याल होते ही सरस्वती के हाथ की क़लम रुक गई। बेचारी गाल पर हाथ रखकर फिर सोचने लगी— तब क्या करना चाहिए ! इतने में किसी ने पीछे से चुपके-चुपके आकर झट उसके हाथ से वह अधलिखी चिट्ठी ले ली। सरस्वती ने चौंककर पीछे देखा तो धनराज भैया को खड़ा पाया। उसका लड़कपन का वह ऊधमी साथी है। उसके चेहरे-मोहरे पर बचपन की शरारत भरी हँसी अब भी मौजूद है।

सरस्वती खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर बोली—"जान में जान आई धनराज भैया। तुम आ गये। देखकर अब मुझे ढाढ़स हो रहा है। मैं किस सङ्कट में पड़ गई थी यह सब सुन चुके हो न !"

धनराज के कानों में मानों सरस्वती की कोई बात ही नहीं गई। वह उस समय सरस्वती की लिखी उस अधूरी चिट्ठी को एकाग्र चित्त से पढ़ रहा था। सरस्वती ने कहा—"ये तुमको कालेज से लिवा लाने को कह गये थे मगर तुम लोगों के आने में इतनी देर क्यों हुई ! मैं दिन भर कितनी फ़िक्र में पड़ी रही। ये कहाँ गये ! तुम्हारा पता कैसे पाया ! तुम शायद आज कालेज में पढ़ने नहीं गये थे। क्यों भैया ! अच्छा चलो घर पर काकी से कह दूँगी।"

तब भी धनराज को कुछ परवा न हुई। वह उसी तरह बेखटके, निर्विकार भाव से सरस्वती की उस चिट्ठी को पढ़ता रहा। तब सरस्वती ने झपटकर धनराज के हाथ से चिट्ठी छीन ली और हँसते-हँसते कहा— "क्यों धनराज भैया ! पराई चिट्ठी पढ़ने का तुम्हारा रोग क्या अब भी नहीं गया ? क्या हमेशा ऐसा ही लड़कपन करोगे !"

धनराज ने ज़रा भी संकोच किये बिना सहज भाव से कहा—"तुझे कुछ अक़्ल-शऊर होगा कि नहीं सरस्वती! यह क्या दूसरे की चिट्ठी है! तूने हमारे पण्डितजी को ही लिखी है न!"

६

शिवपूजन नीचे धनराज के लिए जलपान का आयोजन करने में व्यस्त था। दूसरी मंज़िल से रह-रहकर धनराज के ठहाका मारने की अवाज़ आती है और शिवपूजन को कुढ़न सी होती है। वह मन ही मन सोचता—दोनों ख़ूब खिल रहे हैं। सरस्वती आज आठ दिनों से यहाँ है मगर मेरे सामने तो कभी हँसकर नहीं बोली! मेरे सामने लजाती है और धनराज भैया के सामने खिलखिलाती है। अच्छा!

मिठाई आ गई। तश्तरियाँ सजाकर ले आने का हुक्म देकर शिव-पूजन ऊपर गया। देखा कि उसके बैठने के कमरे में धनराज एक कुर्सी पर बैठकर बेधड़क बातें कर रहा है; साथ ही हँसता भी है। सरस्वती कुछ दूर एक चौड़ी बेञ्च पर बैठी धनराज के मुँह की ओर देखती हुई उसकी बातें सुन रही है।

शिवपूजन को देखते ही धनराज ने उठकर तकल्लुफ़ से कहा—"आइए शिवपूजनसिंहजी! तशरीफ़ रखिए। कोई है!"

धनराज की मुद्रा देखकर सरस्वती हँस पड़ी।

"सरस्वती! तू हँसती क्यों है! क्या सोचती है कि धनराज भैया इस तरह बातचीत कर रहे हैं मानो ये ही घर के मालिक हैं और शिवपूजनसिंहजी मेहमान हैं। हमारी नज़र में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' है अर्थात् सभी मानों हमारे ही समान भूत हैं।" कहकर धनराज ने क़हक़हा लगाया।

शिवपूजन ने एक कुर्सी पर बैठकर हँसने की कोशिश करके पूछा—"आप लोगों ने कुछ सलाह की!"

धनराज ने कहा—"किस बात के लिए?"

"इन्हीं के सम्बन्ध में। सब हाल सुन चुके हैं न! अब इनके लिए क्या करना चाहिए?"

"मैंने इसको बहुत अच्छी सलाह दी थी। मगर यह सुनती कहाँ है। शिवपूजनजी! आजकल की लड़कियाँ स्वाधीन हो गई हैं। अब अपने ही मन से चलना चाहती हैं।"—कहकर धनराज ने अपना चेहरा बेतरह गम्भीर बना लिया।

शिवपूजन ने प्रश्नसूचक दृष्टि से सरस्वती की ओर देखा तो उसने कहा—"नहीं सिंहजी, इनकी बातों में मत आइए। असली बात पर इन्होंने मुझे कोई सलाह नहीं दी है। मैं जितना ही पूछती हूँ कि धनराज भैया, क्या करना चाहिए, बताइए उतना ही यह विचित्र-विचित्र राय देते हैं। आपके आने के कुछ ही देर पहले इन्होंने कहा था कि सरस्वती, अब गाँव को लौटकर क्या करेगी, विलायत चली जा। गाँधीजी की पुस्तकें पढ़-पढ़कर साहब लोग अब ख़ूब हिन्दी सीख गये हैं। तू विलायत में घूम-घूमकर हिन्दू-स्त्री के उच्च आदर्श पर हिन्दी में भाषण करना। इसी तरह की बातें कहते रहे।" कहकर सरस्वती ने गाल फुला लिये।

सुनकर शिवपूजन के गम्भीर चेहरे पर भी हँसी की झलक आ गई। धनराज ने कहा—"क्या बेजा कहा है, शिवजी! अगर सरस्वती को यह सलाह पसन्द न हो तो मेरे मग़ज़ में और भी योजनाएँ हैं।"

इतने में जलपान की सामग्री आ पहुँची। शिवपूजन ने कहा—"आइए धनराजसिंहजी, ज़रा चाय-पानी कर लीजिए, फिर सलाह होगी।" अब शिवपूजन दो प्यालों में चाय ढालने लगा।

धनराज ने पूछा—"सरस्वती! तू चाय नहीं पियेगी?"

शिवपूजन ने कहा—"वे तो चाय नहीं पीतीं। कहती हैं कि चाय पीने से सिर दर्द करता है।"

धनराज ने कहा—"चाय नहीं पीती! मगर पीना चाहिए। मलेरिया से बचाव होता है। ख़ैर, चाय नहीं पियेगी तो आ।

जवाहर लड्डू ही उड़ा। आकर मुँह फैला, मैं लड्डू झोंक दूँ। आ बहन, आ।"

सरस्वती ने कहा—"धनराज भैया न जाने क्या कह जाते हैं। वे मुझे अब भी वही नन्हीं सी बहन समझते हैं।"

हँसी-मज़ाक़ में चाय-पानी हो गया। क़रीब छः बज गये थे। अँधेरा छा गया। शिवपूजन अच्छी तरह समझ गया कि धनराज से सलाह करके सरस्वती कुछ निश्चय न कर सकेगी; क्योंकि धनराज उसकी सब बातें हँसी में उड़ा देता है। मुझे ही यह काम करना होगा और सलाह-मशविरा सरस्वती के सामने न होना ही ठीक है। इससे उसने प्रस्ताव किया कि चलिए धनराज बाबू! विक्टोरिया-पार्क में टहलें। वहीं सोच-विचारकर कुछ तय किया जायगा।

धनराज ने कहा—"कै बज गये? छः के क़रीब हो गया। अच्छा चलिए।"

दोनों तीन-चार मिनट में विक्टोरिया-पार्क में जा पहुँचे। एक ख़ाली बेञ्च पाकर दोनों बैठ गये। बातचीत शुरू हुई।

शिवपूजन ने कहा—"धनराजजी, आप सरस्वती के गाँव के आदमी हैं। उसके मा-बाप को जानते हैं, गाँववालों को भी जानते हैं। इतने दिन लापता रहने के बाद आप अगर स्वयं जाकर उसे पहुँचा आवेंगे तो लोग क्या समझेंगे, ज़रा सोचिए तो।"

धनराज ने कहा—"बात सचमुच विचारने लायक़ है। गाँव के लोग पूछेंगे—यह इतने दिन कहाँ रही? उससे भी पूछेंगे और मुझसे भी पूछेंगे। उसके पिता को चिट्ठी लिखना आरम्भ करने के समय आपने जो आशंका की थी, ठीक वही होगा।"

शिवपूजन ने कहा—"तो अब क्या करना चाहिए? उसके पति को चिट्ठी लिखकर यहाँ बुलाना चाहिए?"

धनराज ने थोड़ी देर चुप रहने के बाद कहा—"वे आकर देखेंगे कि उनकी स्त्री एक अपरिचित युवक के घर में पड़ी है। वहाँ कोई स्त्री तो

क्या कोई पुरुष स्वजन भी नहीं है। और एक-आध घंटे नहीं, दस-बारह दिनों से है।"

शिवपूजन ने लम्बी साँस लेकर कहा—"यह बड़ी भारी भूल हो गई है। बेशक भूल हुई है। जैसा पहले सोचा था वैसा ही करते, यानी एडवर्ड अस्पताल में पहुँचा आते, तो यह सवाल ही न खड़ा होता। उस समय मेरे दिमाग़ में यह बात आई ही नहीं धनराज बाबू! मैंने सोचा कि भले घर की लड़की को अस्पताल में भरती कर आना, ख़ास करके इस उम्र की लड़की को......"

"यह तो ठीक है। आपने उस समय जिस दृष्टि से विचार किया था वह ठीक ही था। मगर अब जाने दीजिए, जो बात बीत गई उसके लिए क्या सोच करना?"

कुछ देर दोनों आदमियों ने इस बात पर बहुत विचार किया कि अब क्या करना चाहिए मगर कोई बात तय नहीं हुई; एक-एक करके सभी प्रस्ताव कट गये।

इसके बाद दोनों कुछ देर चुप बैठे रहे।

अन्त में धनराज ने कहा—"आप और मैं दोनों आदमी सलाह करके कुछ तय नहीं कर सकेंगे। इस सलाह में एक और आदमी को शामिल करना ज़रूरी है।"

"किसको?"

"सरस्वती के पिता शीतल पंडित को। एक चिट्ठी भेजकर उनको बुलवावें। चिट्ठी में और कुछ न लिखकर सिर्फ़ इतना ही लिखा जाय कि एक बहुत ज़रूरी काम है, आप तुरत चले आइए। वे आवें तो उनसे सब बातें खोलकर कही जायँ। वे पिता हैं, अपनी सन्तान को अच्छी तरह से जानते हैं। उनके मन में शायद ऐसा सन्देह कभी न होगा कि उनकी लड़की ने कोई अनुचित काम किया है। रह जाते हैं गाँव के लोग। क्या उपाय करने से उन लोगों के हमले से आत्मरक्षा हो सकती है इसकी सलाह हम लोग उन्हीं से करेंगे।"

शिवपूजन ने कुछ देर सोचकर कहा—"यह सलाह बुरी नहीं है, ख़ास करके उस हालत में जब इसके सिवा और कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है। मगर आप उनसे जितनी उदारता की आशा करते हैं वह क्या अधिक नहीं है! याद रखिए कि वे पुराने ख़याल के आदमी हैं। अँगरेज़ीवाले नहीं हैं; चाणक्य के श्लोकवाले हैं—'विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च' के स्कूल के आदमी हैं। उनकी अपेक्षा सरस्वती के पति को विश्वास दिलाना सहज हो सकता है।"

धनराज ने कहा—"मगर और एक दृष्टि से विचार करना चाहिए शिवपूजनजी! बालगोविन्दजी अर्थात् सरस्वती के पति प्रेम का चश्मा लगाकर देखेंगे जिसके शीशे ज़रा-सी धूल से धुँधले हो जा सकते हैं। पिता देखेंगे सन्तान-स्नेह की निगाह से। वे आँखें ऐसी हैं कि बुरी दिशा भी अच्छी दिखाई देती है। इतना ही नहीं, अच्छी दिशा बहुत ही विमल दिखाई देती है।"

शिवपूजन ने कहा—"आपका यह कहना ठीक है।"

"और आपको जो यह आशङ्का होती है कि अगर उपाध्यायजी अपनी लड़की के विषय में कुछ अनुचित सन्देह करेंगे और समाज के भय से उसे घर ले जाना न चाहेंगे, तो उस हालत में सरस्वती के पति तो हैं ही, उनको सूचना देकर बुला लेंगे।"

"यही सलाह अच्छी है। आप उपाध्यायजी को चिट्ठी लिखिए। जब तक वे नहीं आते तब तक सरस्वती कहाँ रहेगी!"

"आपके यहाँ जैसे है वैसे ही रहे।"

यह सुनकर शिवपूजन को कुछ तसल्ली हुई। यह बात पूछते समय उसके जी में ज़रा खटका हुआ था कि धनराज अपने किसी हित-मित्र के बाल-बच्चों में ले जाकर सरस्वती को रखने का प्रस्ताव न करे।

धनराज ने कहा—"कै बजे! ज़रा घड़ी देखिए तो।"

शिवपूजन ने मुँह का सिगरेट ज़ोर से दो-तीन बार खींचकर उसी की लपट में अपनी कलाई घड़ी देखकर कहा—"पौने आठ।"

"तब उठिए। यही बात रही।" कहकर धनराज उठ खड़ा हुआ। शिवपूजन भी उठा।

फाटक के बाहर आकर धनराज एक्का ढूँढ़ने लगा। शिवपूजन ने कहा—"यह क्या ! सरस्वती से भेंट न कीजिएगा ! उसको बताना चाहिए न कि क्या तय हुआ।"

"आप ही कह दीजिएगा। अब मैं सीधे अपने 'मेस' को जाऊँगा, आज एक ब्याह का न्योता है। मेस में कपड़ा बदलकर जाऊँगा। सरस्वती के यहाँ जाने से देर हो जायगी। अच्छा, नमस्कार।" कहकर धनराज एक चलते एक्के पर बैठ गया। शिवपूजन ने कहा—"चिट्ठी रजिस्ट्री करके भेजिएगा। देहात का मामला है। मामूली चिट्ठी को पोस्टमैन न जाने किसके हाथ में दे दे। जहाँ तक बन पड़े, इस मामले को अभी गुप्त रखना ही उचित है न।"

"आप ठीक कहते हैं। मैं चिट्ठी रजिस्ट्री करके भेजूँगा।"

"और लिफ़ाफ़े पर भेजनेवाले का नाम-पता कुछ मत लिखिएगा। क्या जाने, पोस्टमैन के हाथ से रास्ते में कोई आदमी चिट्ठी देख ले। उस हालत में यही शोहरत मचेगी कि लड़की-खोये हुए शीतल उपाध्याय के नाम से इस गाँव के ज़मींदार के पुत्र धनराजसिंह ने चिट्ठी भेजी है। देहात के आदमी बहुत दूर की कौड़ी लाते हैं। न जाने क्या सोचकर चारों ओर प्रचार करने लगें।"

७

रास्ते में शिवपूजन को ख़याल आया—धनराज से यह कहना तो भूल ही गया कि कल या परसों या बीच-बीच में मेरे यहाँ आकर सरस्वती को देख जाया कीजिएगा। मगर वह शायद आप ही आवेगा।

फिर शिवपूजन मन ही मन हिसाब लगाने लगा—अब और कै दिन ! कल धनराज सरस्वती के पिता को चिट्ठी लिखेगा। परसों उनको चिट्ठी

मिलेगी। देहात का डाकखाना है। दो-एक दिन की देर भी हो सकती है। मगर रजिस्ट्री चिट्ठी में देर न लगेगी। अच्छा, मान लिया कि परसों नहीं तो नरसों उनको चिट्ठी मिल जायगी। उसके दूसरे दिन वे वहाँ से रवाना होकर रात-बिरात काशी पहुँच जायँगे और दूसरे ही दिन सरस्वती को लेकर अपने घर या और कहीं चले जायँगे। इस तरह सिर्फ़ और चार-पाँच दिन मैं सरस्वती को देखने पाऊँगा। इसके बाद ? इसके बाद फिर कभी नहीं, इस जीवन में नहीं। शिवपूजन की छाती धड़क उठी और एक ठंढी साँस निकल पड़ी।

शिवपूजन ने घर पहुँचकर देखा कि उसके बैठने के कमरे में सरस्वती मेज़ पर झुककर कोई पुस्तक पढ़ रही है। वह सीढ़ी पर चढ़कर बरामदे में खड़ा हुआ मगर सरस्वती ऐसी तल्लीन थी कि शिवपूजन के पैर की आहट उसके कानों में नहीं गई। सामने टेबुल पर बिजली का लम्प जल रहा था और उसकी रोशनी सरस्वती के मुँह पर पड़ रही थी। शिवपूजन मुग्ध होकर उस मुखड़े की शोभा देखने लगा। एक-दो मिनट देखने के बाद ठंढी साँस लेकर उसने मन ही मन कहा—"और चार-पाँच दिन।"

कमरे में शिवपूजन के घुसते ही सरस्वती ने चौंककर सिर उठाया और पुस्तक टेबुल पर रखकर बोली—"आप आ गये! धनराज भैया कहाँ हैं!"

इस प्रश्न से—धनराज भैया के लिए इतनी खोज देखकर—शिवपूजन को कुछ कुढ़न हुई मगर उसने उस भाव को दबाकर कहा—"वे नहीं आये। कहा कि कहीं न्योता है।"

कहते-कहते शिवपूजन टेबुल के पास पड़ी हुई एक आराम-कुर्सी पर बैठ गया।

सरस्वती सिर नीचा करके न जाने क्या सोचने लगी। फिर बोली—"आपने कुछ सलाह की!"

"हाँ, एक सलाह हुई है।"

जो सलाह हुई थी उसे शिवपूजन ने संक्षेप में सरस्वती को कह सुनाया।

सुनकर सरस्वती ने कहा—"यही शायद अच्छा होगा। पिताजी आ जायँगे तो कोई फ़िक्र न रहेगी।

"वे नाराज़ तो न होंगे?"

"नाराज़ होंगे! आपको न जाने कितना आशीर्वाद देंगे। आप न होते तो क्या उनकी लड़की इतने दिन बचती! मर जाती। आपने मेरे प्राण बचाये हैं। वे आप पर नाराज़ क्यों होंगे?"

यह सुनकर शिवपूजन का थोड़ी देर पहले का मानसिक दुःख दूर हो गया। दोनों में सरस्वती के मा-बाप की, उसके छोटे भाई की बाबत बातचीत छिड़ गई। गाँव के लोगों की चर्चा छिड़ने पर सरस्वती ने कहा—"चिट्ठी निर्विघ्न बाबूजी के हाथ में पहुँच जाय तो बात है।"

शिवपूजन ने कहा—"यह बात हम लोगों ने पहले ही सोच ली है। धनराजसिंह से कह दिया कि चिट्ठी रजिस्ट्री करके भेजिएगा।"

"रजिस्ट्री! मगर कल तो रविवार है। क्या रविवार को यहाँ रजिस्ट्री होती है! हमारे यहाँ के डाकख़ाने में तो नहीं होती।"

शिवपूजन ने कहा—"सचमुच, कल तो रविवार है, यह बात हममें से किसी को याद ही नहीं रही। कल रजिस्ट्री नहीं लगेगी। ख़ैर, और एक दिन मिला।"

अन्तिम वाक्य कहकर शिवपूजन के जी में ख़याल आया—अरे! यह क्या कह दिया! उसका मन बहुत सिटपिटा गया।

सरस्वती शिवपूजन की ओर एकटक देखने लगी। पूछा—"और एक दिन क्या मिला?"

शिवपूजन बड़े फेर में पड़ गया। ज़रा सोचकर कहा—"यानी सलाह करने के लिए और एक दिन मिला।"

"हूँ" कहकर सरस्वती ने ज़रा कुछ सन्देह की दृष्टि से देखा।

शिवपूजन ने कहा—"अरे! नौ बज रहे हैं। आप बीमार हैं। अभी तक आपने खाया-पिया नहीं। देखूँ, रसोई में क्या देर है।" अब वह तुरत नीचे उतर गया।

सरस्वती टेबुल पर कुहनी रखकर गाल पर हाथ दिये बैठी सोचने लगी।

थोड़ी देर बाद मज़दूरनी ने आकर पास की कोठरी में सरस्वती के लिए पीढ़ा-पानी रख दिया। रसोइया ब्राह्मण भोजन की थाली ले आया। शिवपूजन ने आकर कहा—"आपके लिए भोजन आ गया, जाइए खा लीजिए। खाकर सो रहिए।"

भोजन-गृह के उस तरफ़वाले कमरे में सरस्वती के सोने की जगह है। मज़दूरनी भी उसी कमरे में सोती है। इधर कई दिन से खाने के बाद सरस्वती सीधे उसी कमरे में चली जाती है, फिर इधर नहीं आती। शिवपूजन से फिर भेंट नहीं होती।

शिवपूजन ने कहा—"भोजन परोस गया; जाइए।"

"जाती हूँ।" कहकर सरस्वती सिर नीचे किये बैठी रही।

मज़दूरनी ने कहा—"आइए बहिन!"

"चलो दाई! अभी आती हूँ।"

मज़दूरनी चली गई। सरस्वती ने कहा—"आप कब भोजन कीजिएगा? आप पहले भोजन कर लीजिए न।"

"अभी मुझे देर है। अभी तो नौ ही बजे हैं। आप बीमार हैं, आप देर न करें। जाइए, रसोई ठंढी हो रही है।"

"जाती हूँ।"

सरस्वती ने मुँह से कह दिया, मगर उठी नहीं। सिर नीचे करके न जाने क्या सोचने लगी। इसके बाद वह सिर उठाकर बोल उठी—"आप एक अधिकार मुझे दीजिएगा?"

"क्या, कहिए।"

"आज से मैं आपको भैया कहूँगी। आप सोच सकते हैं कि इतने दिनों के बाद अचानक इसका ख़याल क्यों हुआ तो बतलाती हूँ। आप जब हमारे धनराज भैया के मित्र हुए तब मेरे भी भाई हुए। हुए कि नहीं?"

शिवपूजन ने ज़रा फीकी हँसी के साथ कहा—"शायद हुआ।"

सरस्वती ने कहा —"फिर भी शायद ? क्यों, आपके तो कोई बहन नहीं है न ? आदमी के एक बहन होनी चाहिए।"

"शायद होनी चाहिए।"

"सभी बातों में आपका 'शायद' है। अच्छा, अब से मैं आपकी बहन हुई। ठीक है न ?"

"ठीक है।"

"अच्छा ! एक बात और है। मैं जब आपकी छोटी बहन हुई तब आप मुझे आप-आप मत कहिएगा।"

"अच्छी बात है। अब जाओ, खा लो।"

"जाती हूँ भैया" कहकर सरस्वती उठी।

बीच के किवाड़ लगाकर शिवपूजन कुर्सी पर बैठा-बैठा गहरे सोच-विचार में डूब गया।

ट

चार दिन के बाद रात के दस बजे शिवपूजन ने धनराज के यहाँ जाकर उससे पूछा —"उपाध्यायजी की क्या ख़बर है ? वे आये ?"

"नहीं।"

"चिट्ठी ठीक तौर से भेजी गई थी ?"

"इसमें क्या सन्देह, मगर उसके दूसरे दिन इतवार था, उस दिन रजिस्ट्री नहीं हुई। सोमवार को चिट्ठी रजिस्ट्री करके भेज दी है।"

"यहाँ से भेजी हुई चिट्ठी के दिन में आपके गाँव पहुँचती है ?"

"तीसरे दिन डिलेवरी हो जाता है।"

"तो आज उनको चिट्ठी मिल गई होगी। गाड़ी कब आती है ?"

"दस बजे हमारे गाँव में चिट्ठी बँटती है। चिट्ठी पाते ही रवाना हों तो आज रात-बिरात पहुँच जायँगे।"

"शायद कल आवें।"

"शायद किसी दूसरे गाँव को चले गये हों, घर पर न हों। लौटने पर चिट्ठी पावेंगे तो दो-एक दिन की देर भी हो सकती है। सरस्वती कैसे है?"

"मज़े में है। आप तो उसको देखने भी नहीं आते।"

"फ़ुर्सत नहीं मिली। कल या परसों शाम को आऊँगा। आप घर पर रहेंगे न?"

"हाँ, रहूँगा क्यों नहीं। आइएगा। अच्छा तो आज्ञा दीजिए; नमस्कार।"

दो दिन बाद धनराज शिवपूजन के यहाँ आया मगर उपाध्यायजी का कोई समाचार न दे सका। दिन पर दिन बीतने लगे, एक सप्ताह बीत गया तो भी कुछ ख़बर न मिली। सरस्वती को बिना कुछ बताये शिवपूजन और धनराज दोनों मिलकर इस विषय में तरह-तरह की बातें सोचते थे मगर कुछ निश्चय नहीं कर पाते। चिट्ठी रजिस्ट्री कर देने से ही अमर थोड़े हो गई, वह भी मारी जा सकती है। पहले की चिट्ठी नहीं पहुँची समझकर धनराज ने वैसी ही दूसरी चिट्ठी रजिस्ट्री करके भेजी।

देखते देखते पहली चिट्ठी लिखने के बाद तीन सप्ताह बीत गये, तो भी कुछ ख़बर न मिली।

अब क्या करना चाहिए इस विषय में रोज़ तर्क-वितर्क होता, मगर कुछ निश्चय न होता। सरस्वती को यहाँ रहते एक महीने से अधिक हो गया। वह अब रोने-कलपने लगी है। शिवपूजन यथा-सम्भव उसको ढाढ़स बँधाता है। धनराज भी बीच-बीच में आकर उसे समझाने की चेष्टा करता है। सरस्वती कहती है—"शायद मेरे बाबूजी जीवित नहीं हैं, होते तो ज़रूर आते, कम से कम चिट्ठी का जवाब तो आता।"

पहली चिट्ठी भेजने के एक महीने बाद धनराज ने दिन के तीन बजे शिवपूजन के घर आकर कहा—"यह देखो एक सरकारी लिफ़ाफ़ा आया है।"

शिवपूजन ने देखा कि वह लिफ़ाफ़ा डेड लेटर-आफ़िस से आया है। अन्दर धनराज की लिखी हुई वही पहली चिट्ठी है। उसके लिफ़ाफ़े पर वहाँ के चिट्ठीरसाँ ने लिखा है—"मकतूब अलै काशी गया है इसलिए डिपाज़िट।"

नीचे एक तारीख़ लिखी है, उसके नीचे और एक सप्ताह बाद की तारीख़ देकर उसी चिट्ठीरसाँ ने लिखा है—

"मकतूब अलै अभी तक काशी से नहीं लौटा। कब तक लौटेगा, पता नहीं। इसलिए वापस।"

उस दिन धनराज शाम के बाद तक शिवपूजन के घर पर रहा। सरस्वती से उसकी यही सलाह ठहरी कि अब उसको उसके पति के पास ले जाना ही उचित है।

शिवपूजन ने कहा—"तो ऐसा ही कीजिए। सब बातें उनको समझा दीजिएगा।"

धनराज ने कहा—"मगर अकेले मेरे जाने से नहीं होगा, तुमको भी साथ चलना होगा। किस हालत में तुम सरस्वती को उठा लाये, किस कारण उसको यहाँ इतने दिन रहने को लाचार होना पड़ा। ये सब बातें तुम्हारी ही ज़बानी उनको मालूम होनी चाहिएँ। मामला जब सङ्गीन हो गया है तब उसमें सबूत-शहादत अच्छी तरह से देने की ज़रूरत है।"

शिवपूजन साथ जाने को तैयार हुआ, मगर बोला—"अब मेरी कालेज की हाज़िरी घटना ठीक नहीं। पहले ही से मेरा परसेंटेज कम है। अगले सप्ताह शुक्रवार और शनिवार को दो दिन ईद की छुट्टी है, रविवार भी मिल जाता है। उसी समय चलना ठीक होगा। बृहस्पतिवार को एक्सप्रेस से रवाना होकर शुक्रवार को वहाँ पहुँचें और रविवार को वहाँ से चलकर सोमवार को यहाँ लौट आवें।"

यही सलाह रही। यह भी तय हुआ कि बालगोविन्द को पहले से चिट्ठी भेजकर कुछ बताया न जाय।

जाने के दिन तीसरे पहर दाई जब सरस्वती के बाल बाँध रही थी, तब सरस्वती की आँखों से आँसू टपकने लगे। दाई ने पूछा—"रोती क्यों हो बहन!"

सरस्वती ने कहा—"जाती तो हूँ दाई! मगर मालूम नहीं भाग्य में क्या लिखा है।"

दाई ने कहा—"घबराओ मत, तुम्हारी जैसी पतिव्रता स्त्री के भाग्य में अच्छा ही लिखा होगा।"

धनराज विश्वेश्वरगञ्ज में एक 'मेस' में रहता है। यह तय हुआ था कि मोग़लसराय होकर कानपुर जायँगे। शिवपूजन ने एक्सप्रेस में दूसरे दर्जे का एक कमरा रिज़र्व कराया है। वह अपनी मोटर से सरस्वती को लेकर धनराज के यहाँ जायगा और उसको भी साथ लेकर राजघाट स्टेशन जायगा। वहाँ से तीनों मोग़लसराय जाकर कानपुरवाली एक्सप्रेस में सवार होंगे।

शाम को जल्दी-जल्दी खा-पीकर शिवपूजन और सरस्वती घर से निकलने की तैयारी में थे कि अचानक शिवपूजन को अरदली बाज़ार से अपने एक रिश्तेदार की चिट्ठी मिली। उसमें शिवपूजन को लिखा था कि एक बहुत ज़रूरी काम है, कम से कम पाँच मिनट के लिए तुरत चले आइए।

तब! घड़ी निकालकर शिवपूजन ने देखा कि अरदली बाज़ार में उस रिश्तेदार के यहाँ हो आने में देर हो जायगी और गाड़ी छूट जायगी। तब उसे एक उपाय सूझा। उसने गोदौलिया से नौकर को भेजकर एक टैक्सी मँगवाई। जब उसके दरवाज़े पर अपनी मोटर और किराये की मोटर यानी टैक्सी आकर खड़ी हुई तब वह सरस्वती को लेकर नीचे उतरा। उसने सरस्वती को अपनी मोटर पर चढ़ाकर शोफ़र से कहा कि इनको विश्वेश्वरगञ्ज धनराजसिंहजी के यहाँ ले जाओ। उनको लेकर राजघाट के स्टेशन पर जाना। मैं एक काम करके इसी टैक्सी से ठीक समय पर राजघाट पहुँचूँगा।

शिवपूजन की मोटर सरस्वती को लेकर चली गई। टैक्सी अरदली बाज़ार की ओर गई।

अरदली बाज़ार का काम पूरा करके शिवपूजन ने टैक्सीवाले से कहा—"ज़ोर से चलाओ।"

मोग़लसरायवाली गाड़ी के राजघाट पहुँचने में पन्द्रह मिनट की देर है। टैक्सी बड़ी तेज़ी से रवाना हुई।

मछोदरी से आगे बढ़ने पर शिवपूजनवाली टैक्सी एक एक्के से टक्कर खा गई। एक्के का घोड़ा गिर पड़ा। उस पर सवार दो अधेड़ मुसाफ़िर चोट खाते-खाते बचे। एक्केवान और टैक्सी के ड्राइवर में खूब गाली-गलौज होने लगी। बहुत आदमी जमा हो गये। पुलिस ने आकर झगड़ा रोका और दोनों गाड़ियों के नम्बर नोट कर लिये। शिवपूजन का भी नाम-पता लिख लिया। एक्के पर जो दो मुसाफ़िर सवार थे उनमें से जिसके बदन पर रेशमी चादर थी उसका नाम-पता पूछा गया तो उसने कहा—"मेरा नाम रघुराजसिंह है। मेरा मकान आरा ज़िले के बरुना गाँव में है।"

आरा ज़िले का बरुना गाँव सुनते ही शिवपूजन ने समझा कि ये शायद सरस्वती के गाँव के आदमी हैं। वह नहीं जानता था कि धनराज के पिता का नाम रघुराजसिंह है। वह यह भी नहीं जान सका कि यह दूसरा आदमी सरस्वती का पिता, शीतल उपाध्याय है—ये दोनों अभी काशी स्टेशन पर उतरकर धनराज के यहाँ जा रहे हैं।

इसी बीच में लोगों ने घोड़े को उठाकर खड़ा कर दिया था। टैक्सी पहले चली गई और एक्का पीछे से गया।

रेलगाड़ी के छूटने में तीन मिनट की देर थी कि शिवपूजन प्लेटफ़ार्म पर पहुँच गया। धनराज डब्बे से सिर निकालकर देख रहा था, शिवपूजन के आ जाने पर उसने कहा—भला आ तो गये। मैं तो समझ रहा था कि पहुँच नहीं सकोगे।

शिवपूजन ने कहा—अजी, कम आफ़त नहीं थी। रास्ते में आते-आते टैक्सी एक एक्के से लड़ गई।

"कैसे ?"

संक्षेप में घटना का वर्णन करके शिवपूजन ने कहा—"और दिल्लगी सुनो, उस एक्के पर जो आदमी था वह तुम्हारे गाँव का रहनेवाला था। बताया—आरा ज़िले का बरुना गाँव।"

सरस्वती बोल उठी—"बरुना का आदमी ! कौन था शिवपूजन भैया?"

शिवपूजन ने कहा—"उसका अच्छा सा ही नाम था, भूल रहा हूँ। हाँ, शायद धर्मराजसिंह।"

सरस्वती ने सोच-विचार कर कहा—"हमारे गाँव में धर्मराजसिंह कौन है ? याद तो नहीं आता। गाँव में न जाने कितने आदमी हैं, सबको थोड़े जानती हूँ।"

धनराज को भी याद नहीं आया कि धर्मराज सिंह नाम का कोई आदमी है।

गार्ड के सीटी देने पर गाड़ी खुल गई।

उधर रघुराजसिंह सरस्वती के पिता को लेकर विश्वेश्वरगञ्ज में धनराज के वासस्थान पर पहुँचे। एक्केवान को पैसा देकर दोनों मेस में घुसे और पूछा—"धनराजसिंह कहाँ रहते हैं ?"

एक आदमी ने उँगली से दिखाकर कहा कि इस मकान में, ऊपर दक्खिन ओरवाली कोठरी में जाइए।

दोनों ने वहाँ जाकर देखा कि धनराजसिंह का ख़िदमतगार पलटू कहार चौकी पर लेटे-लेटे हुक्का गुड़गुड़ा रहा है।

पलटू अपने ज़मींदार साहब को अचानक इस तरह स्वयं उपस्थित देखकर ससंभ्रम खड़ा हो गया। हुक्का कोने में छिपाकर उसने बाबूजी को सलाम किया।

रघुराजसिंह ने कहा—"क्यों रे पलटुआ ! क्या समाचार है ?"

"बहुत अच्छा है सरकार।"

"धनराजसिंह कहाँ है ?"

"वे तो पछाँह घूमने चले गये।"

"कब गये ?"

"आज ही गये सरकार, आधा घंटा हुआ।"

"कब लौटेंगे ?"

"सोमवार तक लौटने को कह गये हैं।"

"अकेले ही गये हैं या और कोई साथ में है ?"

"और किसी को तो नहीं देखा, सिर्फ़—"

पलटू बोलते बोलते हिचक गया। हाल ही उसके गाँव का एक हजाम काशी आया था। उसकी ज़बानी पलटू ने कुछ अफ़वाह सुनी थी।

रघुराजसिंह ने फिर पूछा—"सिर्फ़ क्या ? सब बातें साफ़-साफ़ बता हरामज़ादे ! नहीं तो जुतियाते-जुतियाते खोपड़ी गञ्जी कर दूँगा।"

पलटू ने हाथ जोड़कर काँपते-काँपते कहा—"सरकार ! पहले एक मोटर-गाड़ी दरवाज़े पर आकर खड़ी हुई। उसकी आवाज़ सुनते ही बाबूजी ने कहा—चल। मैं उनका बेग और छड़ी-छाता लेकर पीछे-पीछे गया। बाबूजी ने मोटर के पास जाकर कहा—"सरस्वती ! तू अकेली आई। मैंने उसमें इन पण्डित जी की लड़की सरस्वती को बैठी देखा। वे कैसे यहाँ आईं यह मैं कुछ नहीं समझ सका। बाबूजी से पूछने को भी मौक़ा नहीं मिला। उनके चढ़ते ही मोटर रवाना हो गई।"

"हा, भगवान् !" कहकर शीतल उपाध्याय पास की चारपाई पर धम से बैठ गये।

रघुराजसिंह ने पूछा—"तूने सरस्वती को और किसी दिन काशी में देखा था ?"

पलटू ने हाथ जोड़कर कहा—"नहीं सरकार ! और किसी दिन नहीं देखा था, आज ही पहले-पहल देखा। यह बात मैं बाबा विश्वनाथ की शपथ खाकर कहता हूँ।"

"किस गाड़ी से गये, कहा ? एक्सप्रेस से ?"

"हाँ, सरकार।"

"हूँ" कहकर लम्बी साँस के साथ रघुराजसिंह भी उसी चारपाई पर बैठ गये। उन्होंने बैग से टाइमटेबुल निकालकर रोशनी मँगवाई और चश्मा लगाकर उसे पढ़कर हिसाब लगाया कि एक्सप्रेस को रवाना हुए दस मिनट हो गये।

८

मोग़लसराय पहुँचते ही कानपुर की ओर जानेवाली एक्सप्रेस मिली। उस पर शिवपूजन, धनराज और सरस्वती तीनों सवार हो गये। एक्सप्रेस धुआँधार जा रही थी। तीनों मन ही मन सोच रहे थे कि यही मानो भाग्य की गति है। यह हम लोगों को लेकर कहाँ जा रही है कुछ ठिकाना नहीं।

सरस्वती अपने पति के पास जा रही है। जो पति उसको एक दिन भी बिना देखे नहीं रह सकता था उसके पास इतने दिन की अनुपस्थिति के बाद जा रही है। इससे सरस्वती के मन में आनन्द अधिक हो रहा था कि डर यह वह निश्चय नहीं कर पाती थी। वह सोच रही थी कि मैं इतने दिन से गाँव छोड़े हुए हूँ, इसका पता अगर उनको लग गया होगा तो क्या वे मेरी बात पर विश्वास करके मुझे ग्रहण कर सकेंगे? मेरे लड़का नहीं हुआ कहकर मेरी सास अपने लड़के का दूसरा ब्याह करने को आतुर थीं ही; सिर्फ़ बेटे का मन न पाकर वे अपनी इच्छा पूरी न कर पाईं। अब अगर इसी बहाने अपने लड़के को नाराज़ देखकर उन्होंने अपनी इच्छा पूरी करा ली हो तो मुझे वहाँ जाकर यही देखने में आवेगा कि मेरी जगह एक दूसरी लड़की ने आकर दख़ल कर ली है। सिर्फ़ मकान में ही नहीं, पति के हृदय में भी! मेरे लिए वहाँ कहीं जगह नहीं है। शायद इतने दिन मेरे पति ने मुझे ढूँढ़ा हो; मगर मैंने तो अब तक किसी को कुछ ख़बर नहीं दी। पिता को भी नहीं जताया। इसलिए अब अगर ससुराल और पति के हृदय से मैं बेदख़ल हो गई होऊँ तो इसके लिए

मेरी सास और पति ज़िम्मेदार हैं कि मैं स्वयं ! सरस्वती की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह सोच रही थी कि अगर मेरे पति ने इसी बीच में सचमुच दूसरा व्याह कर लिया हो तो मेरी क्या दशा होगी ! अगर मेरे पति मेरी सब बातों पर विश्वास करके मुझे रखना स्वीकार भी कर लें तो क्या मैं सौत के साथ रह सकूँगी ! मैं जिस मकान और हृदय की अकेली स्वामिनी थी वहाँ एक दूसरे बिलकुल अनजान आदमी के साथ अधिकार के विषय में रोज़ खींचातानी करनी होगी। और अगर पति तथा सास नहीं ही स्वीकार करें तो सारा मामला खतम। फिर मैं कहाँ की हूँगी ! शायद मायके में मा-बाप मुझे नहीं छोड़ेंगे मगर एक महीने बाद पति के घर और हृदय से खदेड़ी जाकर मैं किस मुँह से पिता के घर में खड़ी हूँगी ? वे लोग ही क्या मुझ पर विश्वास कर सकेंगे ! या पहले का स्नेह उनसे फिर मैं पाऊँगी ! पति ने जिसको अविश्वास करके त्याग दिया है, जो एक महीने कहाँ रही, कोई नहीं जानता उसको घर में लेने से जाति-बिरादरी या समाज में पिता मुँह दिखाने लायक़ नहीं रहेंगे। मैं अपने पिता का सिर नीचा करके जो आश्रय पाऊँगी वह घृणा के अंगारे से जलता हुआ होगा। उठते-बैठते, ताने-तिश्ने की बौछार सहनी पड़ेगी। लेकिन अगर वह आश्रय भी न मिले तब ! शिवपूजन ने मुझे असहाय, विपद्-ग्रस्त देखकर आश्रय दिया है। उसके घर में हमेशा रहने का मुझे क्या अधिकार है ! और शिवपूजन ही मुझे हमेशा क्यों रखने लगा ! लेकिन उसी समय सरस्वती को शिवपूजन का यह वाक्य याद आ गया— 'चलिए और एक दिन मिला।' वह सरस्वती को अपने यहाँ रखना चाहता है इसका अन्दाज़ उसके मुँह से असावधानी से निकले हुए इस सावधानी-भरे वाक्य से मिलता है। मगर उसका यह आश्रय भी निर्विघ्न नहीं है। शिवपूजन के चित्त का भाव सिर्फ़ इसी एक वाक्य से तो प्रकट नहीं होता, उसकी हर बार की चितवन से विदित हो जाता है। मुझे देखते ही उसके हृदय की ख़ुशी आँख के कोने से झाँककर उसकी दृष्टि को चम-कीली बना देती है, उसके छिपाने की चेष्टा करने पर भी वह पकड़ में

आ जाती है। वह कितनी ही बार कितने ही बहाने लेकर मुझसे कुछ बतियाने की कोशिश करता है, दूर से मन मारे मेरी ओर एकटक देखा करता है।

यह बात याद आते ही सरस्वती ने उलटकर देखा कि डब्बे के उस तरफ़ की बेंच पर कोने में ओठँगे, पैर फैलाये शिवपूजन बैठा है मगर उसकी नज़र उसी के चेहरे की तरफ़ है। सरस्वती मन ही मन काँप उठी। उसने अपनी नज़र उधर से हटाई तो धनराज की ओर दृष्टि गई। धनराज डब्बे के बीच की बेञ्च पर सोया हुआ है। उसकी दृष्टि गाड़ी की हरे रंग की चिमनी से ढकी बिजली बत्ती के चारों ओर भुनगे की तरह चक्कर काट रही है। सरस्वती ने सोचा—धनराज भैया बड़े आदमी हैं, क्या वे मुझको आश्रय नहीं दे सकते ! जी में यह बात आते ही सरस्वती को परम दुःख की निराशा में भी हँसी आ गई। जिसको बाप के घर और ससुर के घर में जगह नहीं उसको धनराज भैया जगह देंगे ! धनराज के पिता तो मेरे पिता के गाँव के ही आदमी हैं; वे अपने लड़के को मेरे सदृश पति की त्यागी हुई और माँ-बाप से दुरदुराई हुई लड़की को क्यों आश्रय देने देंगे ! सरस्वती से और सोचते न बना। वह गाड़ी की खिड़की के पास बैठकर बाहर की ओर देख रही थी। उधर कैसा घोर अन्धकार था! उसका अपना भविष्यत् भी ऐसा ही घोर अन्धकारमय जान पड़ा। जो होनेवाला है उसी की प्रतीक्षा में सरस्वती स्तब्ध बैठी रही। वह सोचते-सोचते व्याकुल हो गई थी। अब उससे और कुछ सोचते नहीं बनता था।

शिवपूजन डब्बे के दूसरे किनारे की बेञ्च पैर पैर फैलाये आधा लेटा हुआ एकटक सरस्वती की ओर ही देख रहा था। गाड़ी धड़धड़ाती हुई जितनी ही आगे बढ़ती जाती थी उतना ही वह सोचता था कि सरस्वती अपने पति की ओर अग्रसर होती जा रही है और मुझसे क्रमशः अलग होती जा रही है। इसी से वह जब तक उसके सामने है तब तक देखकर अपने मन को तृप्त कर लेना चाहता था। उसका मन उसकी

आँखों की पलकों को गिरने ही नहीं देना चाहता था। सरस्वती विवाहिता है। उसको वह अपनी बहन मान चुका है फिर भी वह सोचता था कि यह हमेशा मेरे पास रहती तो मेरा जीवन धन्य होता। मैं अपने माँ-बाप की एक ही सन्तान हूँ। सरस्वती अगर मेरी बहन होकर ही हमारे घर रहती तो भी मैं सुखी होता—यह बात भी वह अपने मन से कहला रहा था। समष्टि रूप से उसके मन की इच्छा गिचपिच हो रही थी, कुछ साफ़ नहीं जान पड़ती थी। वह सोचता था—शायद सरस्वती को इस जीवन में फिर कभी न देख सकूँगा। पति के आदर रूपी प्रकाश में सरस्वती के मन की इतने दिनों की स्मृति कुसपने की छाया की तरह दब सी जायगी। कभी जब उसे अपने इस सङ्कटकाल की याद आवेगी तब मेरी बात भी याद पड़ जायगी और शायद कृतज्ञता द्वारा सिर उठाते ही पति के आदर-समुद्र में विलीन हो जायगी। सरस्वती को संकट से उबारने का मुझे इनाम मिला—जीवन-व्यापी मर्म-वेदना! सरस्वती को अपनी ओर देखकर मुँह फेर लेते और ज़रा हँसते देखकर शिवपूजन को होश हुआ। उसने भी एक बार धनराज की ओर ताककर बाहर के घने अन्धकार की ओर अपना मुँह कर लिया। उसके मुँह से जो लम्बी साँस निकली वह गाड़ी की आवाज़ में मिल गई।

धनराज बिजली बत्ती की ओर देखते हुए कुछ और ही बात सोच रहा था। हमारे गाँव में धर्मराजसिंह कौन है! शायद शिवपूजन से भूल हुई है। मेरे पिता को ही वह धर्मराजसिंह बता रहा है। शायद मेरे पिता ही उपाध्यायजी को साथ लेकर काशी में सरस्वती को ढूँढ़ने आये हैं। अगर मेरे पिता ही आये हैं तब हमारे मेस में पता लगाने जायँगे ही। एक-ब-एक पढ़ना छोड़कर काशी के बाहर चले आने से वे ज़रूर नाराज़ होंगे। लौटकर सरस्वती के सङ्कट की बात बता देने से उनका क्रोध दूर हो जायगा। पलटू ने देख लिया है कि मैं सरस्वती के साथ एक ही मोटर में गया हूँ। बाबूजी अगर सुनेंगे कि मैं अकेले

सरस्वती के साथ काशी से चला आया हूँ तो वे क्या सोचेंगे ? किसी को बिना कुछ बताये चले आना अच्छा नहीं हुआ। अन्त में सरस्वती को आफ़त से उबारने जाकर मुझे ही आफ़त में न फँसना पड़े। यह सोचते-सोचते धनराज के मन में डर बढ़ने लगा। वह अभी गाड़ी से उतरकर लौट जाता तो चित्त को शान्ति मिलती, मगर अब तो गाड़ी एकदम मिरज़ापुर जाकर खड़ी होगी। उसे सरस्वती पर क्रोध होने लगा। वह ग्रहण पर गङ्गाजी में ग़ोता लगाने आई थी, अब आफ़त में ग़ोते खा रही है। उसको उबारने जाकर मैं भी ग़ोते खा रहा हूँ। दो जवान मर्द सुन्दरी युवती को रास्ते से उठा लाकर उसके पति के पास पहुँचाने चले हैं—ऐसे निःस्वार्थ परोपकार-व्रत के ऊपर आजकल के लोगों को विश्वास होगा ? अगर सरस्वती को उसका पति ग्रहण न करे ? तब उसको लेकर फिर लौटना होगा ? फिर ? मैं अपने पिता को और सरस्वती के पिता को कैसे विश्वास दिलाऊँगा कि मुझे सरस्वती के खो जाने की बात पहले नहीं मालूम थी और मालूम भी हुई कई दिन बाद ! भविष्यत् की समस्या बड़ी विकट जान पड़ने लगी। इसी से धनराज सोचने लगा कि शिवपूजन ने जिनको देखा था वे धर्मराजसिंह ही होंगे, मेरे पिता न होंगे।

गाड़ी के डब्बे के तीनों आदमी अपनी-अपनी चिन्ता में डूबे हुए थे। अचानक धनराज उठ बैठा और बोला—"अच्छा शिवपूजन ! तुम्हारी टैक्सी से जो एक्का टकराया था, उसके एक मुसाफ़िर का नाम तुमने धर्मराजसिंह बताया था। रघुराजसिंह नहीं न ?"

शिवपूजन और सरस्वती दोनों बाहर की ओर देख रहे थे। धनराज की बात से दोनों चौंककर घूम गये। शिवपूजन ने कहा—"रघुराजसिंह भी हो सकता है। मुझे ठीक याद नहीं आता। जल्दी में सिर्फ़ एक बार सुना था।"

धनराज ने पूछा—"उनका चेहरा कैसा था, बता सकते हो ?"

शिवपूजन ने कहा—"गोरे रङ्ग का क़दावर शरीर था, लम्बी सी नाक थी, आधी मूँछें पकी हुई थीं। आँखें ख़ूब बड़ी-बड़ी थीं। देखने से क्रोधी स्वभाव जान पड़ता था।"

धनराज का मुँह सूख गया। सरस्वती बोल उठी—"तब तो वे धनराज भैया के पिता ही थे। उनके साथ कौन था, शिवपूजन भैया?"

आज सरस्वती के मुँह से बेधड़क शिवपूजन भैया सम्बोधन सुनकर शिवपूजन ने कुछ हँसते हुए कहा—"उनको मैं नहीं जानता, उनका नाम भी नहीं सुना, मगर उनका हुलिया बतला सकता हूँ। उससे शायद तुम लोग पहचान सको। नाटा क़द, पक्का रङ्ग, एकहरा बदन, दाढ़ी-मूँछ नदारद, सिर पर बड़ी चोटी और एक भौंह पर कटने का निशान था।"

सरस्वती बोल उठी—"वे ही मेरे पिता हैं। शायद उन्होंने पोस्ट-मास्टर से सुना होगा कि रजिस्ट्री चिट्ठी वापस चली गई है इसी से काका को साथ लेकर धनराज भैया के यहाँ मुझे ढूँढ़ने आये हैं।"

सरस्वती का यह अनुमान धनराज को भी अक्षर-अक्षर सत्य जान पड़ा। इससे उसका चेहरा और उतर गया। शिवपूजन को भी कुछ नहीं सूझता था कि क्या कहे। धनराज और शिवपूजन दोनों को चुप देखकर सरस्वती ही फिर बोली—"तो अगले स्टेशन पर हम लोग उतर क्यों न जायँ।

काशी लौटकर अपने मेसवाले कमरे में उपस्थित रहने के लिए धन-राज का मन अधीर हो उठा था। वह चाहता था कि उसके पिता और उपाध्यायजी पहुँचकर देखें कि धनराज काशी में ही है, सरस्वती को लेकर पछाँह नहीं गया है। इसी से सरस्वती की बात सुनकर धनराज ने उत्सुकता के साथ शिवपूजन की ओर देखा। शिवपूजन ने कहा—"अगला स्टेशन मिरज़ापुर है। वहाँ से लौटने के लिए आज रात को कोई गाड़ी नहीं है। कल दिन की गाड़ी से सवार होकर हम लोग जब तक बनारस पहुँचेंगे तब तक इधर कानपुर पहुँच जायँगे। जिसकी थाती है उसको निर्विघ्न सौंपकर हम लोग निश्चिन्ततापूर्वक सोमवार को लौट ही आवेंगे। तब तक वे लोग ज़रूर काशी में ही रहेंगे।"

शिवपूजन जिस समय यह कह रहा था कि जिसकी थाती है उसके हाथ में निर्विघ्न सौंपकर हम लोग निश्चिन्ततापूर्वक सोमवार को लौट ही आवेंगे, उस समय उसके स्वर और दृष्टि से ऐसा विषाद-सूचक भाव झलक रहा था जो सरस्वती के सामने पकड़ में आ गया। सरस्वती ने अपने पति के ज़िक्र और शिवपूजन की बात के ढङ्ग से लजाकर मुँह फेर लिया। शिवपूजन ने देखा कि सरस्वती का चेहरा कमल की तरह खिल उठा है। ऊपर से हरे रङ्ग की चिमनीवाली रोशनी ने उसको और सुन्दर बना दिया है। सरस्वती मुँह फेरकर सोच रही थी कि शिवपूजन के प्रत्येक शब्द का अर्थ गूढ़ है—"जिसकी थाती है उसके हाथ में सकुशल सौंपकर हम लोग निश्चिन्ततापूर्वक सोमवार को लौट ही आवेंगे।" शिवपूजन ने जो बात कही उसे उसका मन कहना नहीं चाहता था। यह बात उसकी उदास आवाज़ से सरस्वती को मालूम हो गई। वह थाती लौटाने तो जा रहा है मगर बेमन से और यह निश्चय है कि वह निश्चिन्त होकर नहीं लौटेगा, फिर उसके मन में यह भारी सन्देह भी है कि लौटना निर्विघ्न नहीं भी हो सकता। सरस्वती लाज और डर से गड़ी जाती थी। वह अँधेरे में अपनी लज्जित दृष्टि को छिपाकर चुपचाप बैठी रही।

बेचारा धनराज उदास चित्त से लम्बा होकर सो गया। यह देखकर शिवपूजन ने कहा—अधिक रात हो गई, अब सोना चाहिए, सरस्वती तुम भी सो रहो।

सरस्वती ने बिना मुँह फेरे ही कहा—"आप लोग सो जायँ। मुझे अभी नींद नहीं आ रही है।"

८

शिवपूजन, धनराज और सरस्वती ने कानपुर पहुँचकर लाठी महाल में बालगोविन्द के वासस्थान की तलाश की।

रास्ते में एक बटोही से शिवपूजन ने पूछा—"क्यों साहब, बालगोविन्द का मकान कहाँ है, बता सकते हैं?"

उस आदमी ने पूछा—"कौन बालगोविन्द? जो डाकघर में काम करते हैं वे या जो म्युनिसिपलिटी में काम करते हैं वे? यहाँ दो बालगोविन्द हैं।"

सरस्वती की छाती और धड़कने लगी। शिवपूजन ने कहा—"म्युनिसिपलिटी में काम करनेवाले बालगोविन्द तिवारी।"

उस आदमी ने कहा—"वह जो बिजलीवाला खम्भा दिखाई देता है उसके सामने का बरामदेवाला मकान बालगोविन्द तिवारी का है। मगर उनके मकान पर तो इस समय कोई नहीं है। वे अपनी स्त्री के सख्त बीमार होने की ख़बर पाकर छुट्टी लेकर अपने गाँव चले गये हैं।"

शिवपूजन ने कुछ हताश और कुछ प्रसन्न होकर पूछा—"यहाँ उनके मकान पर कोई नहीं है?"

जवाब मिला—"नहीं, मकान में ताला बन्द है। बालगोविन्दजी की माता यहाँ थीं। वे भी उनके साथ चली गई हैं।"

शिवपूजन सिर गाड़ी के अन्दर करके बैठ गया और बोला—"अब क्या किया जाय!"

शिवपूजन ने हताश भाव से यह बात कहने की चेष्टा की, फिर भी उसके मुँह और चेहरे से प्रसन्नता झलक पड़ी। तो सरस्वती अब और दो-चार दिन उसी के पास रहेगी।

तुरंत की अस्वीकृति के डर से छुटकारा पाकर सरस्वती के चित्त ने कुछ शान्ति पाई मगर पति के पास लौटने में जितनी ही देर होगी उतना ही उसकी कैफ़ियत का बोझ भारी होगा और उसके पति को विश्वास होना उतना ही कठिन हो जायगा। यह बात सोचकर सरस्वती अकुला उठी। उस आदमी ने जो यह कहा कि बालगोविन्दजी अपनी स्त्री के सख्त बीमार होने की ख़बर पाकर गाँव पर चले गये हैं इसका क्या मतलब? उनको क्या यह मालूम हो गया कि मैं बीमार होकर शिवपूजन के घर पर पड़ी थी? कैसे मालूम हुआ? यह ख़बर तो वे ज़रूर पा गये हैं कि मैं खो गई हूँ और एक महीने से मेरा पता नहीं है।

इतने दिनों से मैंने उनको चिट्ठी नहीं भेजी, इतने दिनों से इन्हीं के घर में हूँ, उस घर में आश्रयदाता के कोई घरनी-वरनी नहीं है या न दूसरी कोई स्त्री-स्वजन है। ये सब बातें उसको डरवाने लगीं। स्त्री की बीमारी के नाम पर गाँव जाने का मतलब क्या नई स्त्री ब्याह लाना और मेरे लिए उस घर का द्वार बिलकुल बन्द कर देना है! हा भगवान्! तो अब मैं किधर की हूँगी! जब शिवपूजन ने हताश होकर कहा—अब क्या किया जाय उस समय सरस्वती ने भयभीत दृष्टि से उसकी ओर देखा। उसकी आँखें डबडबा आई थीं।

धनराज भी दुश्चिन्ता में डूब गया था। बालगोविन्द के हाथ में सरस्वती को सौंपकर लौटने से उसका चित्त बहुत कुछ हलका हो जाता। अब फिर उसे लेकर काशी लौटने में उसे डर लग रहा था—वहाँ उसके और सरस्वती के पिता विचार करने के लिए उसकी इन्तज़ारी में बैठे हैं। अगर उससे उसके पिता पूछेंगे कि तुमने उनको या उपाध्यायजी को ख़बर क्यों नहीं दी या सरस्वती का गाँव नज़दीक रहने पर भी उसे वहाँ न ले जाकर उतनी दूर कानपुर किस समझ से ले गये, तब वह क्या जवाब देगा। यह उसे सूझ नहीं रहा था। इससे उसका डर और बढ़ता जा रहा था। इस कारण चञ्चल धनराज एकदम गम्भीर और गुमसुम हो गया था। धनराज की यह गम्भीरता सरस्वती को और डरा रही थी।

धनराज और सरस्वती को चुप देखकर शिवपूजन ने कहा—"तो अब बनारस ही लौटना होगा।"

धनराज ने लम्बी साँस लेकर कहा—"दूसरा उपाय ही क्या है!"

अन्त में वे लोग शाम को बनारस लौट आये। धनराज राजघाट वाले स्टेशन पर ही उतर गया। शिवपूजन ने उससे कहा—"साथ ही सिकरौर चलो।"

धनराज ने कहा—"मैं इस समय तुम लोगों के साथ नहीं जाऊँगा। मैं यहीं से अपने मेस को जाऊँगा। पिताजी और उपाध्यायजी कहाँ हैं, इसका पता लगाकर शाम को तुम लोगों से भेंट करूँगा।"

सरस्वती ने व्यग्र स्वर से कहा—"जितनी जल्दी हो सके आना धनराज भैया!"

धनराज ने कहा—"अच्छा।"

शिवपूजन सरस्वती के साथ बनारस-छावनी स्टेशन को गया। धनराज राजघाट से एक ताँगे में बैठकर अपने मेस को गया।

धनराज मेस में पहुँचकर चिल्ला-चिल्लाकर पुकारने लगा—"पलटू, पलटू, अरे पलटुआ!"

मेस की मज़दूरनी ने आकर कहा—"पलटू तो यहाँ नहीं है बाबूजी।"

धनराज ने ग़ुस्से से कहा—"वह नवाब का नाती कहाँ हवा खाने चला गया?"

मज़दूरनी ने कहा—"आपके पिताजी आपके गाँव से आकर उसको लिवा ले गये।"

धनराज सन्न हो गया। उसने बड़ी मुश्किल से अपने को सँभालकर स्वयं ताँगे से अपना सामान उतारा और ताँगे का भाड़ा चुकाकर दोनों हाथों में सामान लटकाये वह ऊपर गया। वहाँ अपनी कोठरी के सामने गया तो और भी आश्चर्य-चकित हुआ। उसकी कोठरी में उसकी एक भी चीज़ नहीं है और कोई बिलकुल अपरिचित साढ़े तीन हाथ का शरीर आसन जमाये मुँह से, चिमनी की तरह, सिगरेट का धुआँ फेंक रहा है। धनराज ने दरवाज़े के सामने अपने हाथों का सामान रक्खा ही था कि उसके मेस का पुराना साथी सुधाकर आ पड़ा। उसने धनराज को लौटा देखकर हँसते-हँसते पूछा—"कब आये, धनराज?"

धनराज ने उदास चित्त से कहा—"क्या मामला है, सुधाकर? मेरा कमरा बेदख़ल हो गया! चल सम्पत्ति क़ुर्क़ हो गई!"

सुधाकर ने कहा—"तुमको क्या कुछ मालूम नहीं है? तुम जिस दिन पछाँह गये उसी दिन तुम्हारे पिता और कोई उपाध्यायजी आये थे। तुम्हारे पिता ने हम लोगों को बुलाकर कहा—'अब धनराज यहाँ नहीं रहेगा। मैं उसका सब माल-असबाब ले जाता हूँ। उसके ज़िम्मे जो किराया

और ख़ुराक-ख़र्च बाक़ी हो वह सब चुका दूँगा।' वे सब अदा कर गये हैं। दूसरे ही दिन हर्षचन्द के साले आ गये, इससे हम लोगों ने उनको तुम्हारावाला कमरा दे दिया।"

धनराज ने अपने चित्त के भाव को प्रकट न होने देने की पूरी चेष्टा करके सहज भाव से कहा—"अच्छा, तो इस समय मेरा यह सामान अपनी कोठरी में रख दो, मैं फिर आकर ले जाऊँगा।"

सुधाकर ने कहा—"अभी आकर अभी कहाँ चले?"

धनराज ने सीढ़ी से उतरते-उतरते कहा—"ज़रा पता लगाऊँ कि पिताजी हैं या गाँव को लौट गये।"

सुधाकर ने ऊपर से ही पूछा—"रात को यहीं भोजन करोगे न?"

धनराज ने चिल्लाकर कहा—"नहीं।" वह सड़क पर निकल गया।

धनराज अकेले सुनसान में बैठकर अपनी अवस्था के विषय में विचार करने के इरादे से परिचित लोगों का संसर्ग छोड़कर रास्ते में निकल पड़ा। वह सोचते-सोचते कम्पनी बाग़ में जा पहुँचा। वहाँ अलग एक कोने में बेंच पर बैठकर सोचने लगा—पिताजी मुझे कुछ भी ख़बर न देकर अचानक मेरा सामान लेकर चले गये, इसका मतलब क्या है? मतलब उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसने सिर्फ़ इतना ही समझा कि सरस्वती के खो जाने के साथ इसका कुछ सम्बन्ध है। मगर सरस्वती के खो जाने में उसका क्या अपराध है, यह हज़ार दिमाग़ लड़ाकर भी कुछ स्थिर न कर पाया। शायद उनको ख़बर न देकर हम सरस्वती को पछाँह ले गये, इसी से वे नाराज़ हो गये हैं। ख़ैर, जब उसकी चिन्ता करने से कुछ फ़ायदा नहीं है तब व्यर्थ उसको क्यों सोचें? अब सोचना यह है कि मुझे क्या करना चाहिए। पिताजी से भेट करके, उनके लगाये हुए इलज़ाम की कैफ़ियत देकर अपने को निर्दोष साबित करने जाने में जो हीनता है उसका अपमान, बिना अपराध के, बिना विचार किये पिता के दण्ड देने की शिकायत और रोष तथा पिता के सामने मुलज़िम बनकर विचार-प्रार्थी होने का भय—तीनों मिलकर

तुनुकमिज़ाज धनराज के मन को परेशान करने लगे। उसने जेब से मनीबेग निकालकर देखा कि अब उसके पास एकतालीस रुपये पौने बारह आने नक़द मौजूद हैं; हाथ में हीरे की एक अँगूठी और सोने की घड़ी-चेन भी पूँजी है। इससे उसके कुछ दिन बेखटके कट जायँगे। तब वह क्यों हीनता सहने जाय!

यही निश्चय करके धनराज कम्पनी बाग़ से निकला और 'आज' तथा 'अग्रगामी' अख़बारों के दफ़्तरों में जाकर दो विज्ञापन दे आया— विज्ञापन का शीर्षक था—नौकरी ढूँढ़नेवाला। उसने तय किया था कि कोई नौकरी करके स्वावलम्बी बनेगा।

८

"अग्रगामी"-आफ़िस से निकलकर धनराज गोदौलिया होते हुए शिवपूजन के घर की ओर जा रहा था कि अचानक उसके जी में यह विचार आया कि नौकरी के लिए विज्ञापन देने में भारी भूल हुई है। उसने ठहरकर सोचा—जाकर विज्ञापन रद करा आऊँ। फिर सोचा—विज्ञापन दे दिया तो क्या हुआ, नौकरी करना न करना तो अपने ही हाथ में है।

धनराज के कालेज में एक समिति थी जिसका उद्देश्य था देश से नौकरी करने की मनोवृत्ति बिलकुल दूर करना। धनराज उस समिति का एक प्रधान कार्यकर्ता था। वह प्रायः इस आशय का भाषण किया करता कि नौकरी से ही हमारे देश का सत्यानाश हुआ है। उसने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किया था कि प्राण जाने पर भी कभी नौकरी नहीं करूँगा। सिर्फ़ स्वयं ही हस्ताक्षर नहीं किया था, बल्कि गली-कूचे जहाँ जिसको पाता उससे बहस करके समझा-बुझाकर, ख़ुशामद करके और उससे भी न होता तो धमकाकर तथा अन्त में घृणा दिखाकर उस प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराया करता। इस तरह उसने प्रायः एक हज़ार हस्ताक्षर कराये थे। थोड़े ही दिनों में इतना काम समिति के और किसी मेम्बर

ने नहीं किया था। इससे समिति के सभी लोग उसको शाबाशी देते थे। धनराज के मन में भी इस बात का गर्व था कि उसी के द्वारा समिति का और देश का बहुत सा काम अग्रसर हुआ है। जोश में पिता पर क्रोध करके झटपट नौकरी के लिए विज्ञापन दे आने से धनराज को पश्चात्ताप हो रहा था। क्या करे? इसका कुछ भी निश्चय न करके वह बेनियाबाग़ के सामने पटरी पर इधर-उधर टहलने लगा। प्रतिज्ञापत्र के दो-एक काग़ज़ अब भी उसकी जेब में थे। उसको ऐसा जान पड़ने लगा कि वे उसकी ओर नाक-भौं सिकोड़ रहे हैं। उसने क्रोध के मारे उन काग़ज़ों को टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। अब उसके सामने उन लोगों की मुख-मुद्रा थी जो इस प्रतिज्ञापत्र के लिए उसकी दिल्लगी उड़ाया करते। वे कहते—"हस्ताक्षर करना सहज है मगर काम करने के समय...।" धनराज बाक़ी बात याद करने की हिम्मत न कर सका। वह सोचने लगा—इस 'काम करने के समय' ने ही मेरे सारे स्वाभिमान पर कालिख पोत दी है। पहले ही अवसर पर वह हार मान गया। समझ-बूझकर भूल सुधारी जा सकती है मगर पहली ज़रूरत में ही भीतर की प्रेरणा ने उसको ग़ुलामी की गली में ढकेल दिया। उसे धिक्कार है!

विज्ञापन दे दिया तो क्या हुआ, वह नौकरी हरगिज़ नहीं करेगा। यह बात यद्यपि निश्चित है तथापि युधिष्ठिर के नरक-दर्शन के पाप की तरह नौकरी की इच्छा की कीच तो उसको बदन में लपेटनी पड़ी। इससे उसको अपने ऊपर बहुत क्रोध आने लगा। इस प्रतिज्ञापत्र की बात उसे यथा-समय याद क्यों नहीं पड़ी! मगर याद कैसे आती! धनराज का मन इस धातु का बना है कि जब जो बात उसके मन में घुसकर उत्तेजित करती है उसके सिवा और किसी तरफ़ उसे उस समय ख़याल ही नहीं होता। वह ख़याल रख ही नहीं सकता। उसका मन ऐसा एकहत्था हो जाता है। उसने मन ही मन बड़ी दृढ़ता से कहा—"विज्ञापन दिया, अच्छा किया, लाख रुपये महीने की नौकरी मिलने पर भी स्वीकार नहीं करूँगा। मगर क्या करूँगा! एकतालीस रुपये, पौने बारह आने की पूँजी

से ज़िन्दगी निभेगी नहीं। कौन जानता है कि आगे चलकर क्या होगा। इस बात को सोचकर तो उसने विज्ञापन दिया नहीं। उसने तो इसी जोश में आकर नौकरी ढूँढ़ने का विज्ञापन दिया कि पिता और पिता के धन की परवा छोड़कर वह स्वयं क्या कर सकता है। ख़ैर, जहन्नुम में जाय नौकरी। वह आत्म-सम्मान को जाग्रत् करके आगे बढ़ने लगा।

११

धनराज को ढंका की इमली शिवपूजन के यहाँ जाने के लिए सीधे चेतगञ्ज की सड़क से चलना चाहिए मगर वह विचार-तरङ्ग में ग़ोता खाता हुआ चल पड़ा बेनियाबाग़ के अन्दर की सड़क से और पियरी की तिमुहानी से होकर कबीरचौरावाली सड़क के पास पहुँचा तब उसे ख़याल आया कि कहाँ जाना चाहिए और कहाँ जा रहा है। सोचा कि ज़नाना अस्पताल के पास जाकर वहाँ कोई एक्का कर लूँ। देर तक खड़े रहने पर भी पूरब से कोई एक्का आता नज़र नहीं पड़ा। पश्चिम से एक एक्का आया भी तो उसमें पूरी सवारी थी। इतनी देर में तो मैं पैदल ही ढंका की इमली पहुँच जाऊँगा। यह सोचकर धनराज सिर नीचे किये पैदल ही लल्लनजी के अस्तबल की ओर तेज़ी से चला। वह दो ही चार क़दम आगे बढ़ा था कि उसी एक्के से उतरकर कोई आदमी उसपर टूट पड़ा और पीछे से उसके कोट का गला पकड़कर ज़ोर से बोला—"भागते कहाँ हो ?"

अचानक बाधा पड़ने से धनराज रुक गया। पीछे से उसके कोट का गला इस ज़ोर से पकड़ा गया था कि वह पीछे फिरकर नहीं देख सका कि किसने उसको पकड़ा है। उसने समझा कि ज़रूर कोई गुण्डा है। उन दिनों दिन-दहाड़े आम सड़क पर दो-एक लूट-पाट हो जाने की ख़बरें बीच-बीच में अख़बारों में निकली थीं और इसके लिए चारों ओर आन्दोलन मचा हुआ था। धनराज ने समझा

कि वैसी ही काररवाई मेरे साथ भी हुआ चाहती है। इस समय गुण्डे से झगड़ा करने का उसका इरादा नहीं था। मर्द-बच्चा होकर मदद के लिए गुहार मचाने में भी उसे शर्म मालूम होने लगी। उसने जेब से ४१॥≋)॥। का मनीबेग निकालकर फेंकते हुए कहा—"यह ले ले और चला जा।" उसके कोट का गला जिस आदमी ने पकड़ा था उसने काँपते-काँपते मनीबेग को उठा लिया और ज़ोर से धनराज के मुँह पर फेंका।

चोट खाकर धनराज ने देखा कि सामने महादेव खड़ा है। ग़ुस्से से लाल हो रहा है। महादेव को देखते ही वह ख़ुशी से इतना फूल उठा कि महादेव के उस रुद्रभाव के लिए उसके जी में ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ। उसको यह भी सन्देह नहीं हुआ कि मनीबेग फेंककर उसी ने मेरे मुँह पर मारा है। उसने प्रेमपूर्वक महादेव की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"अरे महादेव! तुम कब काशी आये? किसके साथ आये? मुझे ख़बर क्यों नहीं दी? आओ, आओ।" यह कहकर वह उसका हाथ पकड़कर ले चला। मनीबेग रास्ते में ही पड़ा रह गया।

महादेव ने जिस क्रोध से धनराज पर हमला किया था वह धनराज के इस स्नेह-सने व्यवहार से मानों रफ़ू-चक्कर हो गया। उसने जितनी कड़ी-कड़ी बातें सुनाने के लिए इतने दिन से सोच रक्खा था उनमें से एक भी उसके मुँह से न निकली। वह हमेशा से धनराज को बड़े भाई के समान मानता आया है, बचपन से उसके सामने न जाने कितना मचला और रूठा है और उससे कितना प्यार-दुलार पाया है। वे सब याद आकर उसके उस क्षणिक क्रोध की जड़ उखाड़ने लगे। पहले उसने एक्के पर से देखा कि धनराज उसकी ओर ताक रहा है और फिर झपटकर दूसरी ओर जाने लगा है तो उसको सन्देह हुआ कि धनराज मुझको ही देखकर भाग रहा है। इसी से उसने शेर की तरह झपटकर उसकी गर्दन पकड़ी थी। इसके बाद जब धनराज ने उसकी तरफ़ मनीबेग फेंक दिया तब उसने समझा कि धनराज ने हम लोगों की जो

बुराई की है, उसी के हर्जाने में यह रुपया देता जान पड़ता है। इसी अपमान से चिढ़कर उसने मनीबेग धनराज के मुँह पर फेंका था। लेकिन अब उसके चेहरे की ओर देखकर महादेव सोचने लगा—ये वे ही धनराज भैया हैं—पुराने धनराज भैया ही हैं। धनराज के कर-स्पर्श से गर्मी की सारी आग मानो ठंढी हो गई। उसने समझा कि गाँव की वह बदनामी और अफ़वाह, स्कूल के सहपाठियों का ताना-तिश्ना, माता-पिता का हृदयवेधी शोक सभी निर्मूल है, बेबुनियाद है। धनराज भैया हमारे हमेशा के मित्र हैं, शत्रु नहीं हैं।

महादेव ने बिलकुल सहज भाव से पूछा—"बहन कहाँ है, जानते हो धनराज भैया?"

धनराज ने कहा—"अजी, वहीं तो तुमको ले चल रहा हूँ।"

महादेव का मन फिर खटक गया। तब तो गाँववाली अफ़वाह ग़लत नहीं है, सच्ची ही है! वह चलते-चलते रुक गया।

धनराज ने पूछा—"रुके क्यों?"

महादेव ने रुलाई को गले के नीचे ही दबाकर सिर हिलाते हुए कहा—"तो क्या सचमुच तुमने हम लोगों की इज़्ज़त धूल में मिला दी है?"

धनराज ने चकित होकर पूछा—"इज़्ज़त धूल में कैसे मिला दी?"

महादेव ने समझा—मानों धनराज कहना चाहता है—इससे इज़्ज़त धूल में क्या मिली? इतनी बड़ी घटना को धनराज इतना तुच्छ समझ रहा है, यह सोचकर महादेव को बड़ा क्रोध आया। उसने ज़ोर से धनराज का हाथ झटकारकर कहा—"धूल में नहीं मिलाई! दूसरे की ब्याहता स्त्री को..." महादेव से वाक्य पूरा करते नहीं बना।

धनराज ने और भी विस्मित होकर कहा—"दूसरे की विवाहिता स्त्री को क्या किया है?"

"अभी पूछते हो कि क्या किया है?"

महादेव की इस बात की ध्वनि से कोई अज्ञात आतङ्क मानों धनराज के चित्त पर धीरे-धीरे जमा होने लगा। उसने कहा—"महादेव! मैं तुम्हारी बात ठीक-ठीक समझ नहीं रहा हूँ।"

महादेव ने धनराज के चेहरे की ओर देखा। वह चेहरा साफ़ और निष्कपट था। उसमें छल-कपट या धोखेबाज़ी की छाया भी न थी। उस चेहरे की ओर देखकर महादेव गोरखधंधे में पड़ गया।

धनराज ने अधीर होकर पूछा—"चुप क्यों हो गये? बताओ, क्या कह रहे थे।"

महादेव किस तरह से बात बतावे, यह स्थिर न करके कुछ हिचकने लगा। अन्त में एक ही वाक्य में कह उठा—"तुमने मेरी बहन को छिपा रक्खा है।"

धनराज ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—"मैंने तुम्हारी बहन को छिपा रक्खा है? छिपा क्यों रक्खूँगा?"

महादेव ने सोचा कि धनराज बात को घुमा-फिराकर घटना को दबा रहा है। कहता है—छिपा क्यों रक्खूँगा? किस तरह सवाल करने से धनराज को चकमा देने का रास्ता नहीं मिलेगा, यह देर तक सोचने पर भी महादेव निश्चय न कर सका। उसने कुछ देर ठहरकर पूछा—"तो बहन कहाँ है?"

धनराज ने कहा—"तुम्हारी बहन शिवपूजनसिंह के घर पर है।"

महादेव ने चकित होकर पूछा—"शिवपूजनसिंह कौन?"

"जिसने तुम्हारी बहन की जान बचाई है।"

"जान बचाई?"

"हाँ। तुम्हारी बहन भीड़ में दबकर सड़क पर बेहोश पड़ी थी। शिवपूजनसिंह ने उसको उठा ले जाकर उसकी जान बचाई।"

महादेव ने घबराहट के साथ पूछा—"बहन अच्छी तरह से है न?"

"हाँ।"

महादेव की आँखों के सामने से मानो भारी कुहासा दूर हो गया। उसके उस बाल-हृदय में अब कोई शक-शुबहा और दुविधा न रही। और कुछ पूछने को नहीं रहा। उसने बहन को देखने के लिए उतावला होकर धनराज का हाथ खींचते हुए कहा—"चलो, जल्दी चलो, बहन को देखूँगा।"

धनराज ने बे मन से कहा—"चलो।" उसके चित्त में वह अज्ञात आतङ्क धीरे-धीरे और घना हो रहा था। वह उसी की ओर देखकर भीतर ही भीतर पस्त होने लगा।

महादेव ने जाते-जाते पूछा—"धनराज भाई! तुम्हारा वह दमड़ी तिवारी कितना बड़ा बदमाश है!"

धनराज ने उस तरफ़ कुछ अधिक ध्यान न देकर पूछा—"क्यों, उसने क्या किया?"

"उसी ने तो तुम्हारे और बहन के नाम सारा हल्ला उठाया है।"

अचानक एक धक्का सा धनराज के कलेजे पर आकर लगा। उसने कुछ भी न समझकर पूछा—"क्या हल्ला?"

"उसी ने यह बात फैलाई है कि तुम्हींने बहन को छिपा रक्खा है। पहले से ही तुम लोग सधे-बधे थे।"

धनराज का सारा बदन क्रोध से जल उठा। वह कह बैठा—"मैं उस पाजी, बदमाश से समझूँगा।"

धनराज को बहुत ही ग़ुस्सा आया था मगर उसका असर देर तक न रहा। उसके हृदय के अज्ञात आतङ्क के अन्धकार में वह क्रोध ग़ायब होने लगा।

सरस्वती इतने दिन से लापता है। इसको लेकर भारी गड़बड़ मचेगी यह चिन्ता उसको थी। फिर रह-रहकर उसे यह भी आशा होती कि कुछ गड़बड़ नहीं भी मच सकती है। मगर उसने यह बात कभी न सोची थी कि इतनी बड़ी तोहमत लगाई जायगी कि वह साज़िश करके सरस्वती को भगा ले गया है। कहाँ वह था और कहाँ सरस्वती थी—

कितने दिनों से दोनों अलग-अलग थे। इस बीच में कब सलाह हुई और किस तरह हुई ! इसकी कुछ शहादत पाये बिना ही लोगों ने किस तरह यह अफ़वाह उड़ा दी, यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। वह सोच रहा था—इस पर क्या कोई विश्वास कर सकता है !

उसने पूछा—"महादेव ! इस बात पर किसी ने विश्वास किया है !"

"हाँ।"

"किसने।"

"सभी ने।"

"पिताजी ने विश्वास किया है !"

"हाँ।"

"माता ने !"

"हाँ।"

"तुम्हारे माँ-बाप ने !"

"उन लोगों ने भी।"

"तुमने !"

"किया ही था। नहीं-नहीं, पहले नहीं किया था। जब सभी कहने लगे, ताना-तिश्ना मारने लगे, तब कैसे विश्वास न करता !"

धनराज और कुछ नहीं बोला, सिर्फ़ उसके हृदय के अन्दर से लम्बा 'हूँ' शब्द निकला। उसका चित्त रोष से भर गया। माँ-बाप से लेकर अड़ोसी-पड़ोसी तक सभी ने उसको इतना नीच समझ लिया, यह सोचकर मानों सारी दुनिया से उसको चिढ़ हो गई थी। उसने क्या किया है, उसके आचरण-व्यवहार में लोगों ने ऐसी क्या बात पाई है कि जिससे इतना बड़ा कलङ्क उसके सिर पर लगाने से कोई ज़रा भी न हिचका ! उससे एक बार भी किसी ने पूछने तक की ज़रूरत नहीं समझी ! ज़रा जाँच-पड़ताल भी न की कि यह बात सच है या झूठ ! एकदम फ़ैसला कर दिया। वह सोचने लगा—दुनिया में कोई अपना हमदर्दी दोस्त, अपना आदमी नहीं है। माँ-बाप तक नहीं। इसी से

उसे माँ की कोई चिट्ठी इतने दिन से नहीं मिल रही है। इसी से पिताजी आकर क्रोध के मारे मेरा सामान उठा ले गये हैं और मेरे प्रति घृणा का भाव दिखा गये हैं।

धनराज ने पूछा—"पिताजी ने क्या कहा है?"

महादेव ने कहा—"सुना है कि उन्होंने तुमको त्यागा हुआ कर दिया है।"

धनराज ने मन ही मन गरजकर कहा—"अच्छी बात है!"

महादेव रास्ते में जाते-जाते न जाने कितनी ही बातें बक गया, मगर उनमें से कोई धनराज के कान में नहीं जाती थी। किसी की तरफ़ उसका ध्यान नहीं खिंचता था।

अपनी बात सोचते-सोचते धनराज के जी में सरस्वती की बात आ गई। उसने पूछा—"महादेव! सरस्वती के विषय में लोग क्या कह रहे हैं?"

महादेव ने कहा—"बहन की निन्दा तो गाँव भर में फैल गई है, कान नहीं दिया जाता। इसी से मैं गाँव छोड़कर माँ-बाप को बिना कुछ बताये यहाँ भाग आया हूँ—तुम्हें पकड़ने के लिए।"

"तुम्हारे माता-पिता क्या कहते हैं?"

"वे कहते हैं कि सरस्वती अगर मर गई होती तो हम लोगों को इतना दुःख न होता।"

"ये माँ-बाप हैं। सरस्वती ने ऐसा क्या किया है कि उसके माँ-बाप उसका मर जाना अच्छा समझ रहे हैं! तब इस दुनिया में सरस्वती का भी कोई नहीं है। उसकी अवस्था भी मेरे ही समान है।" धनराज को ऐसा जान पड़ता था कि एक ही रस्सी में उन दोनों को बाँधकर लोगों ने अथाह समुद्र में फेंक दिया है। आह! बेचारी सरस्वती। उसकी बात सोचते-सोचते धनराज का चित्त व्याकुल हो उठा। उसने अधीर होकर कहा—"तो सरस्वती का क्या होगा महादेव भाई!"

महादेव अपने मन की सुस्थिरता से हुलसित हो रहा था। उसने कहा—"होगा क्या ! जब कान पकड़कर सबूत दे दिया जायगा कि सारी निन्दा-शिकायत झूठी है तब लोगों के मुँह पर जूते पड़ जायँगे।"

धनराज सोचने लगा—यह बात इस बालक-हृदय के उत्साह के साथ अगर मैं भी कह सकता तो जान बचती। हाय रे सबूत ! इस दुनिया में सबूत की राह कौन देखता है ! इतना बड़ा कलङ्क जिन लोगों ने हम लोगों को लगा दिया है उन्होंने क्या वह कलङ्क लगाते समय सबूत की बाट देखी थी ? क्या सबूत है ! कहाँ सबूत है ! अगर सबूत आवश्यक होता तो इतना बड़ा अन्याय हम लोगों पर क्योंकर होता ! जो सबूत आदमी के सामने इतना निकम्मा है उस सबूत के सहारे हम लोग निस्तार पा जायँगे ! ऐसा समझना पागलपन है। सरस्वती शहर की सड़क में बेहोश हो गई थी ! एक सज्जन ने उसकी जान बचाकर अपने मकान में रक्खा है। इस बात पर क्या वे लोग अब पतियायँगे, जिनका पेशा ही है झूठी तोहमत लगाकर ख़ुश होना।

तब सरस्वती का क्या होगा ! धनराज के हृदय में यह बात करुण-क्रन्दन करती घूमने लगी। वह मानो किसी तरह विश्वास ही नहीं करना चाहता था कि सरस्वती बिना अपराध के माँ-बाप से त्याग दी जायगी। उसने अधीर होकर पूछा—"महादेव ! तुम्हारे माँ-बाप क्या सरस्वती को फिर अपने घर में रक्खेंगे !"

महादेव ने कहा—"क्यों नहीं रक्खेंगे !"

क्यों नहीं रक्खेंगे—इसका उत्तर कितना जटिल है इस बात को धनराज इस बालक को किस तरह समझावे। माँ-बाप का कोमल हृदय भी पत्थर की तरह कड़ा हो सकता है, इस बात को स्वयं समझते हुए भी धनराज ने महादेव को समझाने की कोशिश नहीं की। वह अपने ही हृदय का विलाप सुनता हुआ चला।

जब शिवपूजन के मकान के पास पहुँच गया तब मानों उसका सपना टूटा। उसने महादेव से पूछा—"बालगोविन्दजी का कुछ हाल जानते हो !"

बालगोविन्द की बात उठते ही महादेव का उत्साह घट सा गया। उसके चमकते चेहरे पर काली छाया आ पड़ी। उसने धीरे से कहा—"जानता हूँ।"

धनराज ने पूछा—"उन्होंने सब सुना है?"

"हाँ।"

"विश्वास कर लिया है?"

"शायद कर लिया है।"

"शायद क्यों?"

"शायद नहीं, सचमुच विश्वास कर लिया है।"

"कैसे जाना कि विश्वास कर लिया है?"

"सुना है कि उनका दूसरा ब्याह हो रहा है।"

"अच्छी बात है" कहकर धनराज ने मानो सारे ब्रह्माण्ड पर एक भारी हथौड़ा जमा दिया।

त

धनराज को देखते ही शिवपूजन ने पूछा—"इतनी देर क्यों हुई धनराज बाबू? वे आपके लिए बहुत घबरा रही हैं।"

धनराज ने गम्भीर होकर पूछा—"कौन, सरस्वती?"

शिवपूजन ने महादेव की ओर सन्देह-सहित देखकर कहा—"हाँ।"

यह नया आदमी कौन है, यह जानने के लिए शिवपूजन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से धनराज की ओर देखा। पूर्ववत् गम्भीर भाव से धनराज ने कहा—"यह महादेव है।" मानों इतने से ही उसका सारा परिचय हो गया। शिवपूजन चुपचाप धनराज की ओर ताकता रहा। वह और कुछ परिचय चाहता था मगर धनराज के मुँह से उत्तर का कोई आभास नहीं मिला। उपाध्यायजी का हाल सरस्वती को बताने के लिए शिवपूजन बहुत व्यग्र हो गया था मगर उस अपरिचित आदमी के सामने सरस्वती सम्बन्धी कोई ज़िक्र छेड़ना उचित नहीं जान पड़ता था।"

उधर सरस्वती धनराज के लिए शाम से ही घर-आँगन एक कर रही थी। जितनी ही देर होती थी उतनी ही उत्सुकता के साथ उसका डर भी बढ़ रहा था। पति से भेंट न होकर कानपुर से लौट आना शुभ लक्षण नहीं जान पड़ता, इस तरह की शङ्का उसे भयभीत कर रही थी। एक असगुन विकट रूप से सामने आ खड़ा हुआ। यह कैसे दूर होगा, कौन कह सकता है। अभी तक सरस्वती के मन में कोई कुशङ्का जड़ जमाने नहीं पाई थी। आज नहीं तो कल माँ-बाप से, पति से भेंट होगी ही— इसी आशा-भरोसे में उसके दिन बीत रहे थे। पति से भेंट न होकर लौट आने से निराशा का पहला धक्का उसे लगा। तभी से उसे ऐसा जान पड़ता था कि कहीं कुछ भारी गड़बड़ मची है। घर लौट जाना पहले जितना सहज जान पड़ता था उतना सहज शायद नहीं है। मानों वह भँवर में पड़ गई है। उससे बाहर निकलना कठिन है। क्या होगा! कौन जाने इस तरह की अनिश्चितता की आशङ्का लगातार उसके दिल को चोट पहुँचा रही थी। इसी से कुछ पक्की खबर पाने के लिए वह छटपटा रही थी। धनराज को जितनी ही देर हो रही थी उसकी अधीरता उतनी ही बढ़ती जा रही थी। वह कमरे से निकलकर बरामदे में आ खड़ी हुई थी कि इतने में धनराज की आवाज़ सुनाई पड़ी। वह झट नीचे उतरकर बैठक के पासवाली कोठरी में चुपके से खड़ी हो गई। इसके बाद जब उसने महादेव का नाम सुना तब तुरन्त बैठक में पहुँच गई।

सरस्वती को एक-ब-एक वहाँ देखकर शिवपूजन चौंक पड़ा। लड़का होने पर भी अपरिचित आदमी के सामने इस तरह आना उचित नहीं हुआ। वह महादेव का हाथ पकड़कर उसे पास की कोठरी की ओर ले जाना चाहता था कि इतने में महादेव ज़ोर से बोल उठा—"बहन!" सरस्वती का चित्त इतना उमड़ आया था कि वह कुछ बोल न सकी। उसने आगे बढ़कर सिर्फ़ महादेव का हाथ पकड़ लिया। फिर भाई-बहन एक दूसरे को कुछ देर तक देखते रहे। सरस्वती ने

आँचल से आँखें पोंछकर धीरे-धीरे कहा—"भाई महादेव, तुम आ गये !" महादेव ने सिर्फ़ इतना ही कहा—"बहन।"

सरस्वती ने सँभलकर कहा—"महादेव, शिवपूजन भैया को नमस्कार करो।" महादेव कृतज्ञ दृष्टि से शिवपूजन के मुँह की ओर थोड़ी देर देखता रहा; फिर नमस्कार किया। महादेव को ऐसा जान पड़ा कि यही तो मेरी बहन है। मेरी बहन वही है, कुछ परिवर्तन तो नहीं हुआ है। तब ! धनराज चुप बैठा भाई-बहन के मिलन का आनन्द देख रहा था और सोच रहा था कि इस कठोर संसार-मरुस्थल में अगर ऐसा ही स्नेह का झरना मुझको होता।

सरस्वती माँ-बाप का कुशल-मंगल पूछकर महादेव का हाथ पकड़े उसे ऊपर ले गई। जाते-जाते महादेव को ऐसा जान पड़ने लगा—यह कमरा, यह मकान, यह शिवपूजन भैया, धनराज भैया और इनके इर्द-गिर्द सब कुछ कैसी उज्ज्वल पवित्रता से परिपूर्ण हैं। यहाँ का सब कुछ मानो हार्दिक प्रेम से पगा हुआ है; कहीं मानो मलिनता, निष्ठुरता का नाम नहीं है। लोगों से व्यंग्य और निन्दा सुनते-सुनते उसके जी में सन्देह हो रहा था कि जहाँ बहन है वह स्थान शायद नरक है। आज इस पवित्रता में बहन को विराजमान देखकर उसके मन की सारी ग्लानि दूर हो गई और हृदय निर्मल आनन्द से भर गया।

घर में नया मेहमान आया है, रात भी हो गई है, तिसपर आज सरस्वती के आनन्द का दिन है। शिवपूजन ठाट-बाट से दावत की तैयारी करने के लिए झट घर से निकल पड़ा। वह सोच रहा था, आह ! अब सरस्वती चली जायगी ! ज़रूर ! कई दिन की ब्याह की धूमधाम के बाद लड़की की विदाई के दिन जैसे कन्यापक्ष का घर काटने दौड़ता है वैसी ही शून्यता का आभास उसके चित्त को मिल रहा था। यह घर-द्वार, यह माल-असबाब, अपने हाथ से टाँगी हुई तसवीरें, अपने हाथ से सजाई हुई लाइब्रेरी, सभी उसे मिथ्या सी जान पड़ने लगीं। सरस्वती मानों सारी दुनिया की रोशनी बुझा-कर चली जा रही है। अगर उसकी चलती तो वह कहानी के

दैत्य की तरह सरस्वती को सब से छीनकर किसी अनजान निराली कन्दरा में चल देता।

धनराज चुप्पी साधे उसी कोठरी में बैठा था। उसके चुटीले चित्त में धीरे-धीरे चिढ़ ज़ोर पकड़ रही थी। यह चिढ़ सिर्फ़ माँ-बाप पर ही नहीं, संसार पर, समाज पर, सब पर थी। यह चिढ़ जितनी ही बढ़ रही थी, उतनी ही विरक्ति उसके मन को कड़वा कर रही थी। वह मन ही मन कह रहा था—मैं कुछ नहीं चाहता, किसी को नहीं चाहता। मगर सरस्वती! उसको ऐसा जान पड़ने लगा कि सरस्वती को मानो भाग्य ने लाकर मेरी छाती पर पटक दिया है। यह सरस्वती बचपन की ही सरस्वती है। दिन-रात मेरे साथ खेलती-कूदती, हँसती-रोती, रूठती-मानती रही है। किस तरह कुछ दिन के लिए सरस्वती मुझसे बिछुड़ गई थी कौन जाने। अब वह फिर आ गई है। कहाँ से, किस तरह आई, कुछ भी मालूम नहीं। सिर्फ़ इतना ही दिखाई दे रहा है कि वह आ गई है। सबके यहाँ से त्यक्त परित्यक्त होकर फिर मेरे पास आ गई है। मानो कोई दुनिया से छीनकर मेरे यहाँ रख गया। उसके और कौन है! कोई नहीं। माँ-बाप नहीं, पति नहीं है। कोई उसको ग्रहण नहीं करेगा। वह अनाथा है, आश्रय की भूखी है। वह मेरी सरस्वती है। धनराज जितना ही सोचने लगा, उतना ही उसे आश्चर्य होने लगा कि किस तरह अज्ञात अवस्था में दोनों एक ही सज़ा के शिकार होकर आसपास आ खड़े हुए। यह वैसा ही है जैसा प्रलय के बाद सिर्फ़ दो प्रेमियों का चारों ओर जल से घिरी हुई एक टुकड़ा भूमि पर एक दूसरे को देखना। धनराज बैठे-बैठे स्वप्न देखने लगा।

थ

महादेव को पाकर सरस्वती को ऐसा जान पड़ने लगा कि अब उसके सामने कुछ भी आफ़त या सङ्कट-विपद् नहीं है, मानो उस भँवर से वह निकल

आई है। महादेव ने अपने चित्त की उमङ्ग से सरस्वती की सारी आशङ्का मिटा दी थी। महादेव की शकल-सूरत और बातचीत से सरस्वती को ऐसा ढाढ़स हुआ कि मानो इसके मन में भी कुछ शङ्का न रही। ग्रहण-स्नान के लिए आने से लेकर जितनी घटनाएँ हुई थीं सब एक-एक करके वह प्रसन्नतापूर्वक महादेव से कहने लगी। इसमें अधिकतर शिवपूजन की बात थी। उसके स्नेह और आदर-भाव ने सरस्वती के चित्त पर कितना प्रभाव जमा रक्खा है, इसका अन्दाज़, महादेव से सब हाल कहते समय, पहले ही पहल सरस्वती को लगा। सरस्वती इस तरह हर्ष-गद्गद होकर शिवपूजन की बात कह रही थी कि सुनते-सुनते महादेव का चित्त भी शिवपूजन के प्रति गहरी प्रीति से पूर्ण होने लगा। सरस्वती ने कहा—"इतने दिन से पराये घर में हूँ मगर एक दिन भी ऐसा नहीं जान पड़ा कि यह दूसरे का घर है। सच कहती हूँ भाई महादेव! शिवपूजन भाई अवश्य हम लोगों के कोई अपने आदमी हैं।"

महादेव को और कुछ नहीं सूझा। वह कह उठा—"शिवपूजनजी सचमुच बहुत भले आदमी हैं।"

सरस्वती ने कहा—"सिर्फ़ भले आदमी ही नहीं हैं। भले आदमी तो बहुतेरे हैं; अपने आदमी दुनिया में कितने पाये जाते हैं!"

महादेव ने कहा—"बात तो ऐसी ही है। अपना काम-धाम छोड़कर तुम्हारे लिए क्या नहीं किया है। तुम्हें लेकर देसावर तक घूम आये। मगर बहन! धनराज भाई ने भी तुम्हारे लिए बहुत कुछ किया है।"

सरस्वती ने कहा—"धनराज भाई उस समय थे ही कहाँ! उनको तो शिवपूजनजी ही ढूँढ़ लाये हैं।"

महादेव को बात ज़रा लगी। उसने कहा—"तो भी धनराज भाई ने कम परिश्रम नहीं किया है।"

सरस्वती ने कहा—"धनराज भाई तो करते ही। वे हमारे गाँव के ठहरे; एक तरह से अपने ही हैं। वे नहीं करेंगे तो कौन करेगा! मगर अनजान अपरिचित शिवपूजनजी ने..."

महादेव ने कहा—"ठीक है। शिवपूजनजी को जब से देखा है तब से मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है..."

सरस्वती ने कहा—"इसी से तो मैं उनको शिवपूजन भैया कहती हूँ।"

महादेव ने कहा—"मैं भी अब उनको शिवपूजन भैया कहूँगा।"

सरस्वती ने मन में सोचा—अब से कहोगे मगर और कितने दिन यहाँ रहोगे! एक-दो दिन से तो अधिक नहीं। उसके बाद से शिवपूजन भाई कहाँ रहेंगे और मैं कहाँ रहूँगी। शिवपूजन भाई अनेक कामों में फँसकर शायद मुझे भूल जायँगे, मगर मैं उनको भूल न सकूँगी। उस पछाँह में, जहाँ अपने आदमी अधिक नहीं हैं, हर घड़ी मुझे शिवपूजन भाई की याद आवेगी। उनको देखने के लिए मन कितना ललचेगा, तरसेगा, मगर देख नहीं सकूँगी। शायद अब इस जन्म में देख न सकूँगी। सिर्फ़ इन कई दिनों की याद रह-रहकर आवेगी। सिर्फ़ मन के आधार बने रहेंगे, इन कई दिनों के शिवपूजन भाई। सोचते-सोचते सरस्वती के हृदय से एक लम्बी साँस निकली। आँखों मे आँसू आ गये।

शिवपूजन महादेव को भोजन करने के लिए बुलाने आया तो देखा कि सरस्वती की आँखों में दो बूँद आँसू मोती की तरह झलक रहे हैं। सरस्वती इस मकान में जब से आई है तब से कभी रोई है कि नहीं, यह शिवपूजन को मालूम नहीं है। उसने किसी दिन उसकी आँखों में आँसू नहीं देखे थे। आज ही पहले-पहल देखे। रुलाई देखकर आदमी के दिल को दुःख होता है मगर न जाने क्यों शिवपूजन को ऐसा जान पड़ने लगा कि ये दो बूँद आँसू बड़े सुन्दर हैं। अगर इन आँखों के दो बूँद आँसू उसे मिलें तो वह बड़े रजवाड़ों के धन की तरह उसे सोने की डिबिया में छिपाकर हमेशा, ज़िन्दगी भर, रक्खे। वह सोचता था कि ज़िन्दगी का सारा नुक़सान ये दो बूँद आँसू ही पूरा कर दे सकते हैं।

आँखों से आँसू गिर पड़े तो भी शिवपूजन मुग्ध भाव से उन आँखों की तरफ़ देखता रहा। सरस्वती चौंककर बोल उठी—"अरे शिवपूजन

भैया !" मगर शिवपूजन का ध्यान भङ्ग नहीं हुआ। उसकी टकटकी की ओर देखकर सरस्वती को ऐसा जान पड़ने लगा कि कोई मेरे मन के अन्धकार को उलट-पुलटकर अच्छी तरह से देख रहा है। इससे वह भीतर ही भीतर कुछ दु:ख सा अनुभव रने लगी। वह झटपट उठकर खिड़की के पास चली गई।

धनराज और महादेव खाने बैठे। सरस्वती ने कहा—"शिवपूजन भैया, तुम नहीं बैठे?"

शिवपूजन ने कहा—"पहले इन लोगों को भोजन कर लेने दो। ये लोग मेहमान ठहरे।"

सरस्वती ने कहा—"यहाँ मेहमान-सेहमान कोई नहीं है। सभी अपने आदमी हैं। तुम भी बैठ जाओ।"

शिवपूजन ने कहा—"मेरे लिए व्यग्र होने की ज़रूरत नहीं है, सरस्वती !"

शिवपूजन ने तो कह दिया कि मेरे लिए व्यग्र होने की ज़रूरत नहीं है मगर सरस्वती को ऐसा जान पड़ा कि आज अपने हाथ से परोसकर शिवपूजन भाई को खिलाने के लिए उसका हृदय व्यग्र हो रहा है। उसने कहा—"नहीं शिवपूजन भैया! ऐसा नहीं होगा। तुमको भी बैठना ही पड़ेगा।"

शिवपूजन ने कहा—"मेरे लिए तुमको इतनी फ़िक्र क्यों है, सरस्वती ! मैं अभागा तो जहाँ-तहाँ, जब-तब जो पाता हूँ, खा लेता हूँ।"

सरस्वती ने कहा—"आज ऐसा नहीं होगा। आज मैं अपने हाथ से तुमको परोसकर खिलाऊँगी।"

शिवपूजन ने विस्मित होकर एक बार सरस्वती के मुँह की ओर देखा, फिर बोला—"आज तुम्हारे दिल में ऐसा ख़याल आया है?"

सरस्वती ने कुछ दु:खभरी आवाज़ से कहा—"भैया! फिर तो मैं पास बैठकर तुमको खिलाने नहीं आऊँगी।" यह कहते-कहते उसका गला भर आया। उसने गला साफ़ करके कहा—"कल मैं चली जाऊँगी।"

धनराज अभी तक चुप था। उसने गम्भीर भाव से कहा—"कहाँ?"

सरस्वती ने कहा—"बरुना।"

धनराज ने कहा—"किसके साथ?"

"महादेव के साथ। तुम भी चलो न धनराज भैया।"

धनराज ने एक शब्द में, मगर दृढ़ता के साथ, कहा—"नहीं।"

सरस्वती ने कहा—"तुम अगर अपनी पढ़ाई में हर्ज समझते हो तो मैं अकेली महादेव के साथ चली जाऊँ।"

धनराज ने कहा—"नहीं।"

यह 'नहीं' शब्द ऐसे गम्भीर स्वर से ज़ोरदार धक्के की तरह सरस्वती को लगा कि वह देर तक कुछ कह न सकी।

सरस्वती ने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि धनराज उसके घर लौट जाने में कोई एतराज़ करेगा। क्यों कर रहा है, यह भी ठीक तौर से उसकी समझ में नहीं आया। उसने आश्चर्य से पूछा—"क्यों मना कर रहे हो धनराज भैया?"

धनराज ने कोई उत्तर नहीं दिया। सरस्वती को कुछ डर सा होने लगा। उसने धनराज के पास जाकर आग्रह से पूछा—"क्यों मना कर रहे हो धनराज भैया!" वह सोच रही थी कि किसी तरह अभी धनराज से जाने की अनुमति लिये बिना मेरा निस्तार नहीं है।

धनराज ने कहा—"नहीं, तुम्हारा जाना नहीं हो सकता।"

महादेव और सरस्वती दोनों आश्चर्य के साथ धनराज की ओर देखने लगे। उनको ऐसा ख़याल हुआ कि धनराज इस तरह बोल रहा है मानो वह जो हुक्म देगा उसे हम लोगों को मानना ही पड़ेगा। एक बार सरस्वती को प्रतिवाद करने की इच्छा हुई मगर इसके योग्य साहस उसके हृदय को न हुआ। तब उसने फिर एक बार आग्रह का भाव दिखाया मगर धनराज के चेहरे की ओर देखकर वह अधिक ज़ोर न बाँध सकी। वह क्या करे, इसका निश्चय न कर सकने से धनराज की ओर एकटक देखने लगी। देखते-देखते वह समझ गई कि धनराज

का चित्त मानो किसी भारी तूफ़ान की सूचना से स्तब्ध और गम्भीर हो गया है। सरस्वती बचपन से जानती है कि धनराज को इस अवस्था से किसी तरह डिगा नहीं सकते, हटा नहीं सकते। उसने डरकर कहा—"तुम्हें आज क्या हो गया, धनराज भैया! तुमने ऐसा भाव क्यों ग्रहण किया!"

धनराज ने बड़ी लापरवाही के साथ कहा—"नहीं, कुछ हुआ नहीं है।"

शिवपूजन ने भी देखा कि धनराज आज पहले का धनराज बिलकुल नहीं है। उसकी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हो गया।

सरस्वती धनराज से निराश होकर शिवपूजन की ओर झुकी। उसने व्यग्रभाव से पूछा—"तुम क्या कहते हो शिवपूजन भैया! मैं महादेव के साथ बहना न जाऊँ!"

शिवपूजन ने कहा—"जब धनराज मना कर रहे हैं तब न जाना ही अच्छा है।"

सरस्वती सोच रही थी कि धनराज मुझे ज़बरदस्ती रोककर अच्छा नहीं कर रहा है। जितनी ही देर होगी उतना ही मेरे लिए बुरा है। उसने शिवपूजन की ओर गिड़गिड़ाहट-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा—"मगर वे कुछ बता नहीं रहे हैं कि किस कारण से मना कर रहे हैं।"

"कारण की ज़रूरत क्या है! मैं मना कर रहा हूँ, जाने नहीं पाओगी।"

इससे सरस्वती को चिढ़ के साथ कुछ क्रोध भी हुआ। उसने कहा—"मैं जाऊँगी। तुम रोकनेवाले कौन!"

धनराज कोई कड़ी बात कहना चाहता था, शिवपूजन इसका अवसर न देकर बोल उठा—"नहीं सरस्वती! धनराज अच्छा ही कह रहे हैं। जब तक तुम्हारे घर से कोई तुम्हें लेने न आवे तब तक तुम्हारा जाना उचित न होगा। तुम लड़कपन मत करो।"

शिवपूजन की इस बात में स्नेह का कुछ ऐसा सुर था कि उससे सरस्वती का बाग़ी मन क्षण भर में वशीभूत हो गया। उसने सोचा

कि शिवपूजन भाई जो कह रहे हैं वही मुझे करना चाहिए। मगर अपनी अवस्था की इस असहायता से उसको रुलाई आने लगी। उसने नाक दबाकर कहा—"तो क्या मैं यहीं पड़ी रहूँगी?"

धनराज के हृदय पर इन शब्दों ने असर किया। उसने कहा—"यहाँ क्यों रहेगी सरस्वती! मैं तुझे अपने यहाँ ले चलूँगा।"

सरस्वती ने कहा—"यह तो एक ही बात हुई। तो यहाँ रहने में ही क्या हर्ज है?"

धनराज ने बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर कहा—"नहीं, नहीं; यह पराया मकान है। तुमको यहाँ रहना नहीं होगा।"

सरस्वती ने व्यथित होकर कहा—"राम-राम! ऐसी बात मत कहो, धनराज भाई! शिवपूजन भाई क्या बेगाने आदमी हैं?"

धनराज को इसका कोई जवाब नहीं सूझा। सरस्वती के लिए शिवपूजन ने जो किया है उससे सरस्वती का कहना सही है मगर सरस्वती ने जिस स्वर से यह बात कही वह स्वर उसे उतना नहीं रुचा। फिर शिवपूजन के कहने से ही सरस्वती की घर जाने की ज़िद मिटी, यह बात भी उसे खटकने लगी। वह फिर गुम-सुम हो गया।

महादेव ने कहा—"तो मैं कल सबेरे ही घर लौट जाऊँ और माँ-बाप को ख़बर दूँ?"

शिवपूजन ने कहा—"यह अच्छा है।"

धनराज कुछ नहीं बोला।

दूसरे दिन तड़के महादेव जब बहन से बिदा लेने गया तो सरस्वती ने कहा—"भाई महादेव! तुमको चुपके से एक काम करना होगा। कोई जानने न पावे।"

महादेव ने पूछा—"कौन सा काम?"

सरस्वती ने एक लिफ़ाफ़ाबन्द चिट्ठी महादेव के हाथ में देकर कहा—"यह चिट्ठी अपने हाथ से दे आना।"

महादेव ने पूछा—"किसको?"

सरस्वती ने कहा—"पता पढ़ लो न।"

महादेव ने देखा कि लिफ़ाफ़े पर लिखा है—"श्री पण्डित बालगोविन्दजी तिवारी की सेवा में।"

महादेव पहले कुछ ठिठककर बहन के चेहरे की ओर देखने लगा, फिर बोला—"अच्छा।"

८

यशोदा की सलाह से उपाध्यायजी को एक तार भेजकर बालगोविन्द उत्तर की राह देखता रहा मगर उपाध्यायजी उस समय रघुराजसिंह को लेकर काशी चले गये थे इससे बालगोविन्द का तार उनको नहीं मिला। डाक से तार का लिफ़ाफ़ा वापस आया देखकर बालगोविन्द का चेहरा उदास हो गया और बेटे का उदास चेहरा देखकर यशोदा ने समझा कि ख़बर अच्छी नहीं है। उन्होंने और कुछ न पूछकर बालगोविन्द से कहा—"बेटा! अब मैं घर जाऊँगी। किसी तरह मुझे भेज सकते हो?"

बालगोविन्द ने कुछ देर सोचकर कहा—"भेज सकता हूँ। करनलगञ्ज के राधेलाल की स्त्री अपने मायके आरा में बीमार हैं। उनको देखने के लिए राधेलाल आरा जा रहे हैं। तुम उनके साथ जा सकती हो। वे तुम्हें चौसा उतार देंगे। मगर तुम गाँव पर किस लिए जाओगी? यहाँ तो एक तरह से मज़े में........"

यशोदा ने बालगोविन्द की बात काटकर कहा—"नहीं, नहीं; मेरे गये बिना नहीं बनेगा और कोई अच्छी कन्या देखकर तुम्हारा फिर ब्याह करना होगा।"

सरस्वती की बदनामी वाली गुमनाम चिट्ठी मिलने के बाद से बालगोविन्द के दिमाग़ में संन्यास लेने की तैयारी ज़ोर पकड़ रही थी और इस तैयारी के सम्बन्ध में उसने अपने गुरुदेव स्वामी परमानन्द के साथ भी इस बीच में एक-दो बार ख़ूब गम्भीर भाव से विचार करके एक तरह से गृहस्थाश्रम त्याग करने का ही निश्चय किया है। किन्तु आज एक ब

एक अपनी माता को फिर गृहस्थी के जञ्जाल में फँसाने की कोशिश करते जानकर बालगोविन्द को बड़ी चिन्ता हुई। वह अपनी माता से और कुछ न कहकर दोपहर की धूप में एक टूटा छाता लगाये सीधे गुरुजी के आश्रम की ओर चल पड़ा।

गङ्गातट पर एक छोटे से सुन्दर मकान में बालगोविन्द के गुरुजी आश्रम बनाकर गुरुआइन के साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं। बहुत से वकील-मुख़्तार और डिप्टी कलक्टर आदि उनके शिष्य हैं। दोपहर की कड़ी धूप में बालगोविन्द वहाँ जा पहुँचा। गुरुजी भोजन के बाद लेटकर भागवत की पोथी को तकिया बनाये नित्य-नैमित्तिक ध्यान में मग्न थे। इससे बालगोविन्द को बाहर इन्तज़ार करना पड़ा।

आश्रम के बरामदे के सामने ही गङ्गाजी बहती हैं। उस पर खुला मैदान है जहाँ कुछ गाय-बैल सूखी घास ढूँढ़-ढूँढ़कर चर रहे हैं। यह दृश्य देखते-देखते बिहार के एक गाँव की घर-गृहस्थी के कुछ दिनों की याद बालगोविन्द के मन में इस ज़ोर से आवाजाही करने लगी कि एक बार उसकी संन्यास की योजना गङ्गा की प्रबल धारा में न जाने कितनी दूर बह गई। अचानक घर में एक भारी गले की आवाज़ सुनकर बालगोविन्द ने समझा कि गुरुजी जागे हैं। वह छाता और जूता बाहर रखकर धीरे-धीरे घर के अन्दर गया। उस समय तीन बज रहे थे।

बालगोविन्द दूर से ही गुरुजी को प्रणाम करके बैठ गया। गुरुजी ने अलसाई आँखों से बालगोविन्द की ओर देखकर कहा—"बैठो, क्या समाचार है!"

बालगोविन्द ने हाथ जोड़कर कुछ उदास भाव से कहा—"बड़ी आफ़त है स्वामीजी! मेरी माँ मेरा दूसरा ब्याह करने के लिए कन्या ढूँढ़ने गाँव को जा रही हैं।"

गुरुजी को सिर्फ़ "हूँ" कहकर लम्बी साँस ले आसन से उठने की तैयारी करते देखकर बालगोविन्द ने उनके पैर पकड़ लिये और गिड़-गिड़ाकर कहा—"अब मेरे लिए क्या उपाय है, गुरुदेव!"

गुरुजी ने आकाश की ओर देखकर कहा—"बच्चा ! संसार माया-मय है। यहाँ आशंका का अन्त नहीं है, आफ़त भी बहुत अधिक है। मैं तो कहता हूँ कि तुम झटपट निकल पड़ो; अब विलम्ब मत करो।"

बालगोविन्द ने रोनी सी आवाज़ में कहा—"मगर मैं तो द्विविधा में पड़ गया हूँ। इस तरफ़ ब्याह करने के लिए माता की आज्ञा है और उधर आप कहते हैं दुनिया से अलग हो जाने के लिए।"

गुरुजी ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"तो माता की आज्ञा का ही पालन करो। मुक्ति की आशा छोड़ दो।"

'छोड़ दो' में गुरु के सनातनी ढङ्ग के क्रोध की झलक दिखाई पड़ी। बालगोविन्द ने और दुखी होकर कहा—"ऐसा कभी हो सकता है ? मैंने तो गृहस्थी छोड़ने का ही निश्चय किया है मगर..."

गुरुजी ने लम्बी जम्हाई लेकर चुटकी बजाते हुए कहा—"यह 'मगर' ही सारे अनर्थ की जड़ है। इसके कारण ही साधना करके भी किसी को तीन जन्म से पहले भी मुक्ति पाते मैंने नहीं देखा।"

बालगोविन्द ने चकित होकर कहा—"ऐं ! तीन जन्म कठिन साधना करने के बाद ?"

"मैं समझता हूँ कि अन्दाज़न् तीन जन्म लगते हैं।"

बालगोविन्द ने ठंढी साँस लेकर कहा—"तब तो देखता हूँ कि मेरे लिए कोई आशा नहीं है। तीन जन्म के बाद और तीन जन्म में भी मेरा 'मगर' दूर होगा कि नहीं, इसमें सन्देह ही है।"

परमानन्दजी ने बड़े गम्भीर भाव से कहा—"गुरु में श्रद्धा-भक्ति रखकर उनका आदेश मानकर चलने से एक जन्म में ही मुक्ति मिल सकती है।"

बालगोविन्द ने बड़े कातर स्वर से कहा—"लेकिन मन में 'मगर' आपसे आप उठ खड़ी होती है। नहीं तो आपका आदेश तो मैं ठीक तौर से मान रहा हूँ।"

परमानन्द ने पूछा—"किस विषय में तुम्हारा 'मगर' है, सुनूँ तो सही।"

बालगोविन्द कहने लगा—"अनेक विषयों में है। सबसे बढ़कर है मेरी स्त्री के चरित्र के सम्बन्ध में उस गुमनाम चिट्ठी के लिए। फिर दूसरा ब्याह करना चाहिए कि नहीं? वन में एकान्तवास करना चाहिए या घर में बैठकर साधना करनी चाहिए? सबसे बढ़कर 'मगर' यह है कि नौकरी छोड़कर माता को भूखों मारना और सरस्वती को छोड़कर स्वयं भी मरना चाहिए कि नहीं?"

बालगोविन्द कड़ाके की धूप में चलकर आया था और स्वामीजी ठंढे घर में सोये हुए थे। इससे गुरुजी ने धीरे से पुकारा—"धीरजानन्द! ज़रा इधर तो आना।" गेरुआ वस्त्र पहने, सिर मुँड़ाये, कमण्डलु हाथ में लिये धीरजानन्द आ धमके। परमानन्द ने बालगोविन्द को दिखाकर कहा—"इनको ज़रा जल-वल पिलाकर शान्त कर लाओ, तब तक मैं हाथ-मुँह धो आऊँ।"

बालगोविन्द ने गुरुजी की खड़ाऊँ आगे कर दी। गुरुजी उसे पहनकर चटर-पटर करते हुए अन्दर चले गये।

बालगोविन्द ने धीरजानन्द की ओर देखकर लम्बी साँस लेते हुए कहा—"भाई, मेरे लिए मुक्ति नहीं है। गुरुदेव ने कहा—अन्ततः तीन जन्म फेरा-फेरी करनी होगी।"

धीरजानन्द ने हँसकर कहा—"अगर मैं ऐसी दवा बतला दूँ कि एक ही जन्म में मुक्ति हो जाय तो क्या दोगे?"

बालगोविन्द ने गिड़गिड़ाकर कहा—"मेरे पास है ही क्या? जन्म-जन्म आपका ग़ुलाम बना रहूँगा।"

धीरजानन्द ने बालगोविन्द की पीठ थपथपाकर कहा—"अजी, अगर एक ही जन्म में मुक्ति पा जाओगे तो फिर जन्म होगा ही क्यों? वृन्दावन चले जाओ। वहाँ देखोगे कि मोर-बन्दर सब एक ही जन्म में तर गये हैं।"

बालगोविन्द ने गम्भीर भाव से कहा—"मगर गुरुजी तो मुझे हिमालय पर जाकर निर्जन वास करने को कहते हैं। अच्छा, आपकी क्या

राय है ! अगर मैं सरस्वती और माँ को छोड़कर अभी चला जाऊँ तो उन लोगों के प्रति अन्याय नहीं होगा !"

धीरजानन्द ने ज़रा हँसकर कहा—"नौकरी से एकदम इस्तीफ़ा देकर भागोगे तभी अन्याय होगा, नहीं तो 'सिकलीव' (बीमारी की छुट्टी) लेकर घूम-फिर आओ जिससे चित्त को कुछ शान्ति मिल जाय। कुछ दिन बीत जाने पर इस दुश्चिन्ता से छुटकारा पा ही जाओगे।"

बालगोविन्द ने उत्साहित होकर कहा—"आपकी ही सलाह ठीक है। आज ही छुट्टी की दर्ख़ास्त देकर माँ को घर पहुँचा दूँगा।"

धीरजानन्द ने हँसकर कहा—"जो कुछ करना हो, यहीं बैठकर करो। घर जाने पर फिर मन 'मगर' कर सकता है। चलो, ज़रा कुछ खा लो।"

बालगोविन्द सिर नीचे किये धीरजानन्द के साथ उसकी कोठरी में दाख़िल हुआ।

५

पहली ही बार ब्याह करने में बालगोविन्द को आपत्ति थी; सिर्फ़ सरस्वती को देख लिया था, इससे उस बार यशोदा उसके पैर में ज़ंजीर बाँधने में समर्थ हुई थी। वह बन्धन टूटते ही बालगोविन्द में फिर वैराग्य का रोग दिखाई दे रहा है और स्वामी परमानन्द और उनकी पत्नी दोनों बालगोविन्द के धर्म-प्रदीप को बत्ती लगाकर उकसा रहे हैं। इससे बालगोविन्द फिर ब्याह करने को तैयार नहीं होगा—यह बात यशोदा ख़ूब समझती थी फिर भी कानपुर के मकान में बैठे न रहकर अपने गाँव को लौट जाने से वह कुछ उपाय कर सकती है, इसका उसे पक्का विश्वास था। इसी से यशोदा बालगोविन्द के गुरु-आश्रम से लौटने की राह न देखकर अपना कपड़ा-लत्ता सन्दूक़ में रखने और सामान बाँधने-छानने लगी।

शाम हो गई। कचहरी से लौटे हुए बड़ी-बड़ी दाढ़ीवाले अमले-फ़मले अपने-अपने ग़रीबख़ानों में आ रहे हैं। एक्के-ताँगों और मोटरों

की भरमार से सड़कें गुलज़ार हैं। यशोदा अपने घर की ऊपरी मञ्ज़िल पर खिड़की के पास बैठी बालगोविन्द की राह देख रही है। इतने में धीरजानन्द ने आकर कहा—"आप अपना सामान बाँध-छान चुकीं माताजी! राधेलाल बाबू वग़ैरह जा रहे हैं। चलिए, आपको भी उनके पास पहुँचा आऊँ।"

यशोदा ने अकचकाकर कहा—"बालगोविन्द नहीं आये! उनसे भेंट किये बिना—।"

धीरजानन्द ने अपने गेरुआ वस्त्र से एक काग़ज़ का टुकड़ा निकालकर यशोदा के हाथ में देते हुए कहा—"पढ़ देखिए बालगोविन्द ने क्या लिखा है।"

यशोदा ने कहा—"आप ही पढ़कर सुना दीजिए। मैं पढ़ना नहीं जानती। बालगोविन्द की तबीयत अच्छी है न?"

धीरजानन्द चिट्ठी पढ़ने लगा। वह इस प्रकार थी—

"माँ, मैं समझ गया हूँ कि तुम देश क्यों जा रही हो। निश्चय जानना कि अब मैं फिर ब्याह नहीं करूँगा। तुम्हारी आज्ञा से मैं गृहस्थी के जाल में फँसा था। सिर्फ़ तुम्हारी आज्ञा कहना तो झूठ ही है, उस बार मेरा भी कुछ झुकाव हो गया था। किन्तु भगवान् की इच्छा कुछ और ही है। उन्होंने मुझे उस जंजाल से मुक्त कर दिया है। अब समझ रहा हूँ कि स्वाधीन भाव से जीवन का असली लक्ष्य सिद्ध करने का समय मेरे लिए आ गया है। गुरुदेव भी यही बात कहते हैं। इसलिए उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके मैं कुछ दिनों के लिए हिमालय के किसी निर्जन स्थान में भजन-साधन करने जा रहा हूँ। मुझे क्षमा करना। ये हमारे गुरुभाई धीरजानन्द हैं। ये तुमको राधेलालजी के पास स्टेशन पर पहुँचा देंगे। सब प्रबन्ध मैंने कर दिया है।—तुम्हारा अधमपुत्र, बालगोविन्द।"

इतनी बड़ी चिट्ठी में से सिर्फ़ हिमालय और साधन ये ही दो शब्द यशोदा की समझ में आये। उसने यह भी समझा कि मुझे देश जाना

होगा, बालगोविन्द नहीं आवेगा। उसने यह बात सपने में भी नहीं सोची थी कि बालगोविन्द इस तरह भाग जायगा। वह आँचल से आँसू पोंछकर चली। धीरजानन्द उसे सामान सहित एक एक्के पर चढ़ाकर रेलगाड़ी पर सवार कराने स्टेशन ले चला।

यशोदा को चौधा गये एक सप्ताह बीत गया फिर भी बालगोविन्द जहाँ का तहाँ ही रहा। वह हिमाचल पहाड़ की ओर एक क़दम भी नहीं गया। परन्तु उसका चित्त मुक्ति के लिए छुटपटा रहा है, यह उसका चेहरा देखकर गुरुधाम और दफ़्तर के सभी लोग समझ गये। छुट्टी मंज़ूर हो जाने पर बालगोविन्द किस तरफ़ को चलेगा, उत्तर-पूर्व को या दक्खिण-पूर्व को—इस बात पर उसके जान-पहचानियों में बाज़ी भी लगने लगी है। बालगोविन्द के सामने और उसके पीछे भी।

न

महादेव चौधा स्टेशन पर उतरकर कुली के साथ चौधा गाँव को चला। रास्ते में कुली की बात-चीत से मालूम हुआ कि घर पर बालगोविन्द नहीं हैं, अकेली उनकी माता हैं। कुली बालगोविन्द के गाँव का ही रहनेवाला था और वही उनकी माता को स्टेशन से गाँव पहुँचा आया था।

कुली की बात सुनकर महादेव ने सोचा—तब वहाँ जाने से क्या फ़ायदा! फिर सोचा—चलकर उनकी माँ से ही भेंट कर लूँ फिर घर चलूँगा।

बालगोविन्द के द्वार पर पहुँचकर कुली ने आवाज़ दी—"माँजी, माँजी।"

दो-तीन बार पुकारने पर भी जब कुछ जवाब नहीं मिला तब महादेव ने कुली से कहा—"तुम तो कहते थे कि माँजी घर पर हैं।"

कुली ने जवाब दिया—"हैं, मगर सवेरे से बुख़ार में बेहोश पड़ी हैं।"

"यह बात अभी तक क्यों नहीं बताई बेवक़ूफ़ ?" कहकर महादेव ने धक्का देकर दरवाज़ा खोला और सामान अन्दर रखकर कुली को पैसा दे विदा किया।

अन्दर जाकर उसने देखा कि सरस्वती की सास एक अँधेरी कोठरी में पड़ी हैं। महादेव ने धीरे-धीरे उनके पैर पर हाथ रक्खा तो उन्होंने चौंक-कर कहा—"कौन बालगोविन्द ?"

महादेव ने कहा—"मैं हूँ माँजी महादेव।"

"महादेव।" कहकर यशोदा ने अपना हाथ महादेव के बदन पर रखकर पूछा—"घर पर सब लोग अच्छी तरह से हैं ? मेरी..." इतना कहकर यशोदा चुप हो गई। उसकी आँखों में आँसू आ गये।

महादेव ने तुरन्त जवाब दिया—"जी हाँ, मेरी बहन अच्छी तरह से है। आप कुछ चिन्ता न करें। वह ग्रहण नहाने काशी जाकर भीड़ में खो गई थी। धनराज भैया ने देखा कि वह रास्ते में बैठी रो रही है। उन्होंने और उनके मित्र शिवपूजन ने उसको अपने साथ ले जाकर डाक्टर से इलाज कराया और उसको भयानक बीमारी से बचाया है।"

यशोदा ने महादेव की ओर देखकर पूछा—"इस समय बहू कहाँ है ?"

"हमारे यहाँ है।" कहकर महादेव ने अपना मुँह चादर से अच्छी तरह पोंछ लिया।

यशोदा ने लम्बी साँस लेकर कहा—"तो वह अफ़वाह ?"

"बिलकुल झूठ है।" कहकर महादेव उठा और बोला—"मैं ज़रा डाक्टर बुला लाऊँ।"

सरस्वती की सास के पास और बैठे रहना निरापद न समझकर महादेव बाहर गया और वहाँ के डाक्टर को ले आया। डाक्टर ने कहा—"यह टाइफ़ाइड ज्वर है।" दवा देकर डाक्टर के चले जाने पर महादेव ने यशोदा के पास आकर कहा—"माँजी जीजा का पता क्या है ? उनके पास तार भेजना होगा।"

यशोदा ने कहा—"वे तार तो पायँगे नहीं। वे साधु होकर हिमालय चले गये।"

महादेव ने कहा—"तब क्या करना चाहिए! आपकी सेवा-शुश्रूषा के लिए कोई ज़नाना चाहिए। क्या मैं बहन को लिवा लाऊँ!"

"लिवा लाओ।" कहकर यशोदा ने आँखें बन्द कर लीं। फिर कहा—"बहू से कहना कि मुझे अफ़वाह पर, गुमनाम चिट्ठी पर, ज़रा भी विश्वास नहीं हुआ, होगा भी नहीं। मेरी बहू सती-सावित्री है।"

महादेव की आँखें डबडबा आईं। इतने में रात को रहने के लिए महल्ले की एक मज़दूरनी आ गई। उसे देखकर महादेव ने कहा—'माँजी! आज रात को यह मज़दूरनी आपके पास सोवेगी। मैं कल बहन को ले आऊँगा। मैं अपना सामान यहीं छोड़ जाता हूँ।"

यशोदा के कहने से महादेव ने ताक़ पर रक्खी हुई मिश्री खाकर पानी पी लिया, फिर स्टेशन आया और वहाँ से यथासमय रेल पर सवार होकर काशी पहुँचा।

५

महादेव के मुँह से सास की सख़्त बीमारी का हाल सुनकर सरस्वती की आँखों में आँसू आ गये। ख़ास करके जब उसने सुना कि उसके पति-देव लापता हो गये हैं—शायद हिमालय की किसी गुफा में जाकर तप कर रहे हैं और उनको कोई समाचार देना सम्भव नहीं है तब उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

शिवपूजन अभी तक चुप था। उसने सिर उठाकर कहा—"सरस्वती को ले जाओगे! एक ब एक उसको ले जाना क्या उचित होगा!"

"वाह! उचित क्यों नहीं होगा! जब बालगोविन्द नहीं हैं तब सास का सारा भार इस समय सरस्वती पर ही तो है। उसको छोड़कर और

कौन सँभालेगा ! सुन ही तो चुके कि गाँव के बिरादरीवाले बुढ़िया के घर झाँकने को तैयार नहीं हैं।"

शिवपूजन ने कहा—"यह भी तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि टाइफ़ाइड ज्वर है। अन्ततः एक दिन के ज्वर को इतना बड़ा नाम देना उचित नहीं है।"

धनराज ने चिन्तित हृदय से पूछा—"तो तुम्हीं बताओ क्या करना चाहिए।"

अभी तक महादेव ने बड़ों की बात में बाधा नहीं डाली थी, वह चुपचाप सुन रहा था। अब उसने कहा—"मैं सिर्फ़ इतना ही सुन आया हूँ कि बहन की सास सबेरे से ज्वर में बेहोश पड़ी है, यह नहीं मालूम कि ज्वर आज ही आया है या पहले से है। मुमकिन है कि कई दिनों से—"

शिवपूजन ने उसकी बात पूरी भी नहीं होने दी और उस पर ध्यान भी नहीं दिया। उसने कहा—"इसके सिवा एक और बात है, धनराज ! उनको मामूली बुख़ार है, दो-चार दिनों में अच्छा हो जा सकता है, मगर इस बीच मे सरस्वती को ले जाने से गाँव में बिरादरी का कितना बड़ा झगड़ा खड़ा हो जायगा, ज़रा सोचो तो सही। सम्भव है कि बालगोविन्द की माँ ने बीमारी की हालत में कह दिया हो कि मैं सरस्वती पर लगाये गये इलज़ाम पर विश्वास नहीं करती, मगर..."

मगर कहकर ही वह रुक गया। महादेव की तरह शिवपूजन का वक्तव्य भी समाप्त होने नहीं पाया। सरस्वती अभी तक चुपचाप सुन रही थी। अचानक उसकी रुलाई ने ज़ोर पकड़ा। उसने रोते रोते कहा—"मगर क्या शिवपूजन भैया ! मुझे क्या तुम लोग यहीं रोक रखना चाहते हो ! मेरी सास बीमार हैं, उनके पुत्र मौजूद नहीं हैं। मैं नहीं जाऊँगी तो और कौन जायगा !"

शिवपूजन ने सिटपिटाकर कहा—"यह तो सही है मगर सोचकर...।"

सरस्वती ने उसी तरह रोते-रोते कहा—"सोचकर क्या कहना चाहते हो ! केवल सोचने-विचारने में ही तो तुमने मेरी यह दशा

कर डाली।" उसने धनराज की ओर देखकर कहा—"मैंने कोई अपराध नहीं किया है। मेरी भलाई के लिए अगर तुम लोग इतनी सोचफ़िक्र न करके मुझे सीधे मेरे घर ले जाते तो शायद मेरी भलाई ही होती और तुम लोगों को भी मेरे लिए इतनी चिन्ता में पड़कर परेशान न होना पड़ता। अब मैं तुम लोगों की कोई मदद नहीं चाहती, मैं महादेव को साथ लेकर चली जाऊँगी। मेरे भाग्य में जो लिखा होगा वह होगा, तुम लोग अब मेरी भलाई की फ़िक्र में मत पड़ो।"

शिवपूजन और धनराज दोनों अकचका गये। सरस्वती को इस तरह बातें करते किसी ने कभी नहीं सुना था। यह बात वे दोनों बिलकुल भूल ही गये थे कि लाभ-हानि के सम्बन्ध में उसकी अपनी भी कोई राय है। अपने दुर्भाग्य को कोसने के सिवा और उसको सुधारने का सारा भार दूसरे पर सौंपने के सिवा वह भी कुछ मन ही मन सोचती है।

धनराज को सहसा कोई जवाब नहीं सूझा और शिवपूजन आश्चर्य से सिर्फ़ ताकता रहा। मगर यह बात उन लोगों के समझने में देर न लगी कि सरस्वती अब उन लोगों की बात मानने को तैयार नहीं है।

सरस्वती ने झटपट आँसू पोंछकर कहा—"शिवपूजन भैया, तुम लोग यह मत समझना कि मैं तुम लोगों का उपकार कभी भूलूँगी मगर इस समय तुम लोगों से हाथ जोड़कर कहती हूँ कि...।" कहते-कहते फिर उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। इस बार उसने आँसू पोंछने की भी कोशिश नहीं की। वह हाथ जोड़कर कहने लगी—"मेरे लिए तुम लोगों ने कितना कष्ट उठाया है, यह मैं जानती हूँ और भगवान् जानते हैं मगर अब एक दिन भी नहीं। आज से मैं अपने दुर्भाग्य का सारा भार अपने ही ऊपर लेती हूँ। शिवपूजन भैया! जिस तरह एक दिन तुमने रास्ते से उठा लाकर मुझे बचाया था उसी तरह आज तुम मुझको सिर्फ़ यही आशीर्वाद दो कि इससे

भी बढ़कर कहीं सहारा पाऊँ और तुम लोगों को कष्ट देने के लिए फिर न आऊँ।"

शिवपूजन ने मुँह फेरकर शायद अपने आँसुओं को ही छिपाया, मगर धनराज ने कहा—"सरस्वती! हम दोनों तुमको यही आशीर्वाद देते हैं। मैं कहता हूँ कि एक दिन तुम्हारा यह सङ्कट ज़रूर दूर हो जायगा मगर मैं भी तेरे साथ क्यों न चलूँ!"

सरस्वती ने सिर हिलाकर कहा—"ज़रूरत नहीं है।"

धनराज ने उत्तेजित होकर कहा—"नहीं क्यों कहती है! मैं अगर सचमुच तेरा भाई होता तो तू ऐसा न कहती।"

उसके पिछले वाक्य से इतने दुःख में भी सरस्वती के चेहरे पर शर्मिन्दगी छा गई। उसने सिर नीचे करके फिर उसी तरह सिर हिलाया।

उसकी यह लज्जा धनराज से छिपी न रही। मगर दोनों के नाम पर जो शर्मनाक अफ़वाह उड़ी है उसको मैं ज़रा भी नहीं मानता, यही बात सवाभिमान जताने के लिए धनराज ने ज़ोर से कहा—"तू क्या यह सोचती है सरस्वती, कि मैं झूठी बदनामी से डरता हूँ! पिताजी के अनुचित दण्ड की परवा करता हूँ! मैं तेरे साथ चलूँगा, देखें गाँव का कौन आदमी मेरे सामने तुझे कुछ कहता है। उसका जवाब मैं दे सकूँगा, लड़का महादेव नहीं दे सकेगा।"

सरस्वती ने आँसू भरी आँखों से उसकी ओर देखकर कहा—"बेशक महादेव नहीं दे सकेगा मगर तुम्हारे देने की भी ज़रूरत नहीं है धनराज भैया! मुझे अपना बोझ आप उठाने दो। मेरे सवाल को तुम लोग और पेचीदा मत बनाओ।"

धनराज ने कहा—"गाँव के लोगों के विषय में ज़रा सोच-विचार ले, सरस्वती! वहाँ अकेली तुम्हारे ऊपर क्या गुज़रेगी यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

सरस्वती क्लान्त सी हो गई थी। उसने और सवाल-जवाब न करके सिर्फ़ ऊपर की ओर मुँह उठाकर लम्बी साँस ली और कहा—"सिर्फ़

ईश्वर ही जानते हैं।" यह कहकर उसने दोनों हाथ सिर के पास ले जाकर न जाने किसको प्रणाम किया और फिर तुरन्त उठकर दूसरी कोठरी में चली गई।

कुछ देर तक किसी के मुँह से कोई बात न निकली। सभी चुप बैठे रहे। भाई महादेव ने कहा—"मगर मैं एक बात कर आया हूँ धनराज भाई। जीजा की माँ से कह आया हूँ कि बहन खोजाने के बाद बीमारी से उठने तक बराबर मेरे ही पास है। ठीक है न शिवपूजन भाई! अलबत्ता तुम लोगों के नाम भी लिये हैं।"

धनराज ने कहा—"धत् पागल! तू नादान है। काशी में सरस्वती तेरे पास है, इस पर क्या कभी कोई पतियायगा! क्या कहते हो शिवपूजन!"

शिवपूजन ने चौंककर हाँ कहा, फिर वह शर्म से उठ खड़ा हुआ और कुछ हँसकर बोला—"मुझे बड़े ज़ोर की नींद आ रही है, धनराज! मैं जाता हूँ।" अब वह मानो डगमगाता हुआ अपनी कोठरी में चला गया।

अपने मकान में उन लोगों का कुछ भी लिहाज़ न करके शिवपूजन सोने चला गया। यह बात उसके स्वभाव के इतनी विरुद्ध थी कि धनराज और महादेव के आश्चर्य की सीमा न रही। मगर सचमुच आज शिवपूजन को इस ओर ध्यान देने की सामर्थ्य नहीं थी। वह बड़ी देर से उदास सा हो रहा था। इतने वाद-विवाद और बातचीत का शायद आधा भी उसके कानों में नहीं गया। वहाँ सिर्फ़ एक ही बात की प्रतिध्वनि बार-बार हो रही थी—"सारा भेद खुल गया! सारा भेद खुल गया। उसके मन की गहरी गुफा में जो कुछ पाप जमा हो गया था वह सब पकड़ में आ गया है। उसमें से कुछ भी अब कहीं छिपा नहीं है। तभी तो वह आज बहेलिये के भय से भीत हरिणी की तरह भागना चाहती है। आज उसका सारा यत्न, सारी सेवा, सारा परिश्रम एकदम व्यर्थ हुआ। बिलकुल निरर्थक हुआ।"

फ

"शिवपूजन भैया!"

"कौन है!"

"मैं, सरस्वती। ज़रा दरवाज़ा खोलो।"

शिवपूजन ने दौड़कर किवाड़ खोला तो देखा कि सामने सरस्वती खड़ी है। रात का अँधेरा अभी दूर नहीं हुआ, उस समय भी काले आकाश में दो-चार बड़े-बड़े तारे चमक रहे थे। सिर्फ़ पूर्व की ओर कुछ उजेला हो गया था। बरामदे के एक कोने में जो लालटेन टिमटिमा रही थी उसी की धुँधली रोशनी में शिवपूजन ने क्षण भर में सब कुछ देख लिया।

सरस्वती के बदन पर पीले रँग की एक चादर थी और उसके पास ही महादेव खड़ा था। उसकी डोरिया क़मीज़ के ऊपर एक अधमैली चादर थी। उसके बायें हाथ में छाता और दाहिने हाथ में एक गठरी थी।

शिवपूजन सिर्फ़ इतना ही देख पाया। मगर जब सरस्वती ने कहा कि शिवपूजन भैया, मैं जाती हूँ तब रोशनी की कमी से हो चाहे आँखों के दोष से हो, उसके मुँह की ओर शिवपूजन की नज़र नहीं पड़ी। उसको ऐसा जान पड़ा कि अचानक क्षण भर के लिए सामने, अगल-बग़ल, ऊपर-नीचे सर्वत्र अन्धकार छा गया है।

"जाने का समय हो गया है। मैं जाती हूँ, शिवपूजन भैया!"

"जाती हो! अच्छा..."

"मैं कहाँ की कौन हूँ, फिर भी तुमको इतने दिन न जाने कितना कष्ट दिया।" यह कहकर सरस्वती ने चादर के कोने से आँखें पोंछीं।

उत्तर में शिवपूजन ने बड़ी मुश्किल से सिर्फ़ इतना ही कहा—"कष्ट क्या! कुछ भी तो नहीं।"

"मगर तुम्हारा मेरी जान बचाना व्यर्थ न जाय। मेरे चलते समय तुम मुझे यही आशीर्वाद दो भैया।" यह कहकर सरस्वती बार-बार आँखें पोंछने लगी।

शिवपूजन से कुछ उत्तर देते नहीं बनता था मगर थोड़ी देर बाद वह बोल उठा—"आशीर्वाद! बेशक! बेशक! आशीर्वाद तो दे ही रहा हूँ। हाँ, महादेव! मोटर के लिए कह दिया गया है?"

महादेव ने कहा—"हाँ, धनराज भैया नीचे बैठे हैं। वे स्टेशन तक हम लोगों को पहुँचा आवेंगे। आप नहीं चलेंगे?"

"मैं! नहीं भाई! मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।"

सरस्वती दूर से ही चुपचाप शिवपूजन की ओर और एक बार देखकर धीरे-धीरे नीचे उतर गई। महादेव ने पास आकर कहा—'मैं भी जाता हूँ भाई साहब!" वह हाथ जोड़कर शिवपूजन को नमस्कार करने जा रहा था कि शिवपूजन उसके दोनों हाथ पकड़कर बरबस अपने कमरे में लिवा लाया और कहा—"महादेव! क्या तुम लोग सचमुच जा रहे हो?"

महादेव अकचकाकर उसके मुँह की ओर देखने लगा—यह प्रश्न उसकी समझ में ही नहीं आया।

शिवपूजन ने फिर कहा—"कौन जाने फिर कब तुम लोगों से भेट होगी और फिर भेट होगी कि नहीं। मैं भी दोपहर की गाड़ी से पछाँह चला जाऊँगा।"

महादेव इस पर भी कुछ कह न सका, मगर बालक होने पर भी वह इतना समझ गया कि शिवपूजन भाई का गला भर आया है।

शिवपूजन ने जवाब की राह न देखकर कहा—"तुम अभी लड़के हो. तुम्हारे ऊपर कितना बड़ा बोझ आ पड़ा है यह शायद तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है। मगर मैं भगवान् से 'मनसा वाचा कर्मणा' यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम लोगों की आज की यात्रा सब प्रकार से निर्विघ्न हो।"

अब शिवपूजन तकिये के नीचे से एक लिफ़ाफ़ा निकालकर महादेव के हाथ में देने लगा। महादेव ने हाथ हटाकर पूछा—"यह क्या है, शिवपूजन भैया!"

"थोड़े से रुपये हैं, महादेव!"

"मगर भाड़े के लिए मेरे पास रुपये हैं शिवपूजन भाई!"

"हैं तो क्या। छोटे भाई को जाने के समय कुछ देना होता है।" यह कहकर वह महादेव की चादर के एक कोने में लिफ़ाफ़ा बाँधने लगा और बोला—"तुम्हारा कोई बड़ा भाई नहीं है, महादेव! इसी से तुम नहीं जानते। बड़ा भाई होता तो वह भी इसी तरह बाँध देता। बड़े भाई के स्नेह का इनाम लेने में शरमाना मत भाई। अगर तुम्हारी बहन को मालूम हो जाय और वह पूछे तो उससे भी यही कह देना।" अब उसने उस गाँठ को उसकी कमर में खोंसकर कहा—"अब समय नहीं है महादेव! तुम जाओ। वे लोग शायद उकता रहे हैं।" यह कहकर उसने एक तरह से ज़बरदस्ती महादेव को बिदा कर दिया।

महादेव ने सीढ़ी से उतरते-उतरते पूछा—"आप कितने दिन पछाँह रहेंगे, शिवपूजन भैया!"

"यह बात आज ही कैसे बता सकता हूँ, भाई!"

कुछ मिनटों के बाद महादेव जाकर जब गाड़ी में बैठा तब उसे अकेले आते देखकर सरस्वती ने तो कुछ नहीं पूछा, मगर धनराज ने पूछा—"शिवपूजन नहीं आये!"

इसका जवाब शिवपूजन ने स्वयं दिया। वह ऊपर के बरामदे में रेलिंग के पास खड़ा था। उसने कहा—"मेरी तबीयत ठीक नहीं है धनराज! और सर्दी लगने नहीं देना चाहता।"

धनराज ने कुछ घबराकर कहा—"तबीयत ठीक नहीं है! तो ओस में खड़े न रहकर अन्दर चले जाओ, भाई! मैं इन लोगों को स्टेशन पहुँचाकर तुम्हें ख़बर दूँगा।"

मोटर चल पड़ी। धनराज की सलाह उसके कानों में गई कि नहीं, कौन जाने, मगर आँखों से मोटर के ओझल हो जाने के बाद भी बहुत देर तक वह उसी तरफ़ देखता हुआ खड़ा रहा।"

स्टेशन पहुँचकर टिकट ख़रीदकर दोनों को गाड़ी में बिठा देने के बाद धनराज ने सरस्वती से कुछ शरमाते हुए कहा—"यद्यपि मैं ख़ुद अपना वर्तमान पता नहीं जानता फिर भी मुझे कुछ ख़बर देना ज़रूरी जान पड़े तो मार्फ़त—"

महादेव ने झट जेब से एक काग़ज़ और पेन्सिल निकालकर कहा—"ठहरो-ठहरो धनराज भाई! तुम्हारा पता लिख लूँ। फिर सुना कि शिवपूजन भाई भी आज ही दोपहर की ट्रेन से पश्चिम जा रहे हैं, मुझसे उनका पता पूछते नहीं बना।"

यह बात सुनकर सरस्वती को आश्चर्य हुआ मगर उसने अपना आश्चर्य प्रकट नहीं किया। अलबत्ता धनराज ने व्यग्र होकर कहा—"क्या कहते हो महादेव! तब तो मुझे अभी जाकर उन्हें रोकना चाहिए।"

सरस्वती ने सिर उठाकर पूछा—"क्यों धनराज भाई?"

महादेव ने कहा—"क्यों क्या! वाह..."

धनराज ने कहा—"वहाँ क्या होगा कौन कह सकता है? ज़रूरत पड़ने पर मैं तो जाऊँगा ही, शिवपूजन को भी बिना ले गये नहीं छोड़ूँगा। तुम क्या मुझे डरपोक समझती हो?"

सरस्वती ने गर्दन हिलाकर कहा—"मैंने तो ऐसा नहीं समझा। मगर तुम लोगों में से किसी को मेरे लिए वहाँ जाने की ज़रूरत न होगी।"

धनराज ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—"नहीं होगी? न हो, मगर सरस्वती! अभी तू हमारे देश के गाँववाले आदमियों को नहीं पहचानती?"

सरस्वती ने इस प्रश्न का ठीक उत्तर नहीं दिया। उसने कहा—"मेरी समझ में नहीं आ रहा है धनराज भाई कि इतने दिन मेरी सारी बुद्धि क्यों मारी गई थी और क्यों इतने दिन अपने काम का भार तुम लोगों पर—दूसरों पर—डालकर मैं चुप बैठी थी। मैंने जो भूल की

है उसकी सीमा नहीं है मगर अब मैं सम्भवत: इतनी बड़ी भूल नहीं करूँगी कि तुम लोगों को गवाही देने के लिए बुलाऊँ।" अब उसने छोटे भाई के हाथ से काग़ज़ का वह टुकड़ा लेकर खिड़की के रास्ते बाहर फेंक दिया।

धनराज ने मन ही मन बहुत क्षुब्ध और लज्जित होकर कहा—"सरस्वती! क्या निरपराध आदमी को भी गवाही देकर अपने को निरपराध साबित करना नहीं पड़ता!"

सरस्वती ने फीकी हँसी के साथ कहा—"यह अदालत में होता है, मगर मैंने अपने इन्साफ़ का भार जिसके हाथ में सौंप दिया है उसके सामने गवाह जुटाना नहीं पड़ता। वह स्वयं सब जानता है।"

यह कहकर उसने आँखों में आये हुए आँसुओं को छिपाने के लिए झट मुँह फेर लिया।

गार्ड के हरी झंडी हिलाने पर ड्राइवर ने सीटी देकर इंजिन चलाया। इस बीच में धनराज ने एक धक्का सँभाल लिया। वह साथ-साथ दो क़दम आगे बढ़कर भी सरस्वती का मुँह नहीं देख सका, फिर भी उसके प्रति चिल्लाकर कहा—"ऐसा ही हो बहन! मैं मन वचन कर्म से प्रार्थना करता हूँ कि वे ही हम लोगों का इनसाफ़ करें।"

सरस्वती ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर देना ही क्या था, मगर गाड़ी के कुछ दूर आगे बढ़ जाने पर भी उसने सिर्फ़ एक बार खिड़की से मुँह निकालकर झाँका तो देखा कि धनराज अभी तक सीधे उन्हीं दोनों की तरफ़ खड़ा देख रहा है।

रास्ते में महादेव न जाने कितनी ही बातें बक गया। उसको अपने ऊपर भारी भरोसा था। यशोदा ने उससे कहा था कि मुझे अफ़वाह पर विश्वास नहीं है और वह भी यशोदा से कह आया है कि काशी में बहन मेरे ही यहाँ है। इसी से वह समझ रहा था कि उसने दुर्घटना को बहुत कुछ सहज कर लिया है। इसी भाव का ढाढ़स वह रह-रहकर बहन को देने लगा मगर बहन जिस तरह चुप थी, उसी तरह चुप बैठी रही।

उसे धनराज की यह बात न भूली कि महादेव की इस बात पर सहज ही कोई विश्वास नहीं करेगा। लेकिन इसके लिए उसके मन में कुछ विशेष घबराहट नहीं थी। वास्तव में जो सत्य नहीं है उस पर अगर लोग अविश्वास करें तो किसी को दोष क्योंकर दिया जा सकता है ? उसके मन में जो असली चिन्ता धीरे-धीरे बढ़ रही थी वह उसकी सास की बात को लेकर थी। सास ने कह तो दिया था कि मुझे अपनी पुत्रवधू पर लगाये गये कलंक पर विश्वास नहीं है मगर उनका यह विचार क्या अन्त तक बना रहेगा ! कहीं किसी समय कोई विघ्न-बाधा न पड़ेगी ! वह समझती थी कि पड़ेगी। वह गाँव में ही पलकर इतनी बड़ी हुई है। वह गाँव के लोगों को पहचानती है। लेकिन यह संकल्प भी उसके मन में दृढ़ हो गया था कि बहुत सी भूल-चूक हो चुकी है, अब वह अपने और अपने पति के बीच में तीसरे को मध्यस्थ नहीं बनावेगी। यह सम्बन्ध टूट जाय तो टूट जाय मगर वह ईश्वर को छोड़कर दोनों के बीच और किसी को निर्णायक हरगिज़ नहीं मानेगी।

गाड़ी यथासमय चौसा स्टेशन पहुँची। वहाँ से एक्के पर महादेव अपनी बहन को लिये जब चौसा गाँव में पहुँचा उस समय तीसरा पहर हो गया था।

यशोदा एक फटे तकिये के सहारे बैठकर ज़रा सा गर्म दूध पी रही थी और तनिक हटकर गाँव की एक विधवा लड़की मूँग की दाल दल रही थी। यशोदा को अब भी कुछ ज्वर था मगर पहले जितना नहीं। उन्होंने महादेव को देखकर ख़ुशी ज़ाहिर करते हुए कहा—"आ गये महादेव ! आओ बैठो। वह कौन है !"

"मेरी बहन आई है।"

"बहन ! बहू !"

इसके बाद ही सरस्वती सास के पैर लगने के लिए झुकी तो यशोदा घबरा उठी। दूध का कटोरा मुँह से झट हटाकर बोल उठी—"ठहरो-

ठहरो बहू! पैर लगने की ज़रूरत नहीं है। दिन भर उपवास करके ज़रा दूध पी रही हूँ, इसको छू मत देना।"

जो लड़की मूँग की दाल दल रही थी वह भी दो हाथ दूर खिसक गई। सरस्वती स्तब्ध होकर खड़ी रही मगर महादेव क्रोध से एकदम लाल होकर बोल उठा—"झूठी कहीं की! कल तुमने क्यों कहा कि मुझे अफ़वाह पर विश्वास नहीं है! क्यों कहा कि..."

"यह लो! मैंने कब कहा कि विश्वास नहीं करती और अगर बुख़ार की बेहोशी में कुछ कह भी दिया हो तो वह बात क्या पकड़ने की है।"

महादेव को रुलाई सी आ गई। उसने कहा—"तब तो मैं बहन को ले ही न आता।" यशोदा ने दूध का कटोरा ज़रा दूर ऐसे स्थान में, जहाँ छू न जाय, रखकर कहा—"अच्छा तो नाराज़ क्यों होते हो बेटा! पांडेजी आवें, चौबेजी को बुलवाती हूँ। तब तक बहू बाहर ही बैठे और बाटी सेंककर या खिचड़ी पकाकर तुमको भी खिलावे और आप भी खाय। सब सामान घर में मौजूद है।"

महादेव का क्रोध चौगुना हो गया। उसने कहा—"हम लोग क्या तुम्हारे घर भीख माँगने आये हैं! तुम इतनी बड़ी बात कह रही हो! अच्छा, समझोगी।" अब उसने सरस्वती का हाथ पकड़कर कहा—"चलो बहन! हम लोग चलें। अभी तक हम लोगों का एक्का खड़ा है। मैं अब एक मिनट भी इसका मुँह नहीं देखना चाहता।"

सरस्वती ने धीरे-धीरे हाथ छुड़ाकर कहा—"चलती हूँ भैया!" इसके बाद घूँघट हटाकर सास की ओर देखते हुए शान्त और सहज स्वर से कहा—"मैयाजी, मैं जाती हूँ मगर मैं भी इस घर की बहू हूँ। आपकी तरह यह भी मेरे ससुर की बुनियाद है। मैंने अभी तक ऐसा कोई अपराध नहीं किया है कि इस घर के बाहर बैठकर मुझे रसोई बनानी-खानी पड़े।"

सास ने कहा—"यह कौन जानता है, बहू।"

सरस्वती की मलिन आँखें अचानक चमक उठीं। वह शायद कुछ कहना चाहती थी, मगर उसके लिए अवसर नहीं पाया। महादेव ज़ोर से उसका हाथ पकड़कर बाहर खींच ले गया और वहाँ से चल दिया।

ब

कल्पना में वैराग्य जितना सुन्दर जान पड़ता है, कार्यतः उसका आनन्द ठीक उतना ही नहीं मिलता। कुछ दिन वृन्दावन में रहकर बालगोविन्द को इसका ख़ासा अनुभव हो गया।

जैसे समुद्र की हवा के झोंके में नाव स्थिर नहीं रहने पाती वैसे ही विक्षुब्ध मन के भीतर शान्त भाव को स्थान मिलना असम्भव है। इसी से बालगोविन्द भी वृन्दावन आकर अधिक दिन तक निश्चिन्त न रह सका। घर, गृहस्थी और अतीतकाल की स्मृति उसको मानो चारों ओर से माया के बन्धन में बाँधने लगी।

उसने मन ही मन सोचा—गुरुदेव कहते हैं कि जगत् मायामय मिथ्या है। लेकिन मुझे गुरु-वाक्य पर बड़ा सन्देह हो रहा है। जिस सत्य को सारी इन्द्रियों द्वारा रातदिन सत्य समझा है इसको इतने सहज में किस तरह मिथ्या मानकर उड़ा दूँ!

गुरुदेव की आज्ञा मानकर वह सनकी की तरह हिमालय की ओर जाकर सचमुच पागल नहीं हो गया। यह सोचकर बालगोविन्द मन ही मन कुछ शान्ति अनुभव करने लगा।

वह सोचने लगा—अब क्या करना चाहिए? फिर कानपुर लौट चलें? परन्तु स्वामी परमानन्द का वैराग्य का लेक्चर, मुक्ति की टीका-टिप्पणी और चिमटा-कमण्डल की खड़खड़ाहट याद आते ही कानपुर की बात उसके मन से बिलकुल भाग गई।

फिर याद आई चौबा की बात। वहाँ उसकी माँ है मगर उसके साथ ही फिर ब्याह करने का प्रस्ताव भी है। इसलिए वह स्थान भी उतना निरापद नहीं है।

अच्छा बरुना चला जाय तो कैसा? मगर इसके साथ ही उसे सरस्वती के लापता होने की बात याद आ गई। बात जिस तरह उसके कानों में पहुँची थी उस पर उसने विश्वास किया भी था और नहीं भी किया था। इसी से असली बात जानने के लिए उसका मन दुःख के साथ बहुत उत्कण्ठित हो गया था परन्तु सरस्वती-शून्य बरुना अब उसके लिए केवल सफल दुःस्वप्न के ऐसा है। इतना ही नहीं, उसके साथ देहाती काना फूसी, बोली-ठोली, ताने-तिश्ने के साथ वह कितना ज़हरीला हो गया होगा, इसकी कल्पना करते ही बालगोविन्द की उत्सुकता बेतरह ठण्ढी पड़ गई।

बालगोविन्द सोचने लगा—"कितनी बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई है। न तो संन्यासी होते बनता है, न घर लौट जाते बनता है और न निटल्ले की तरह यहाँ बैठे रहते ही बनता है। मैं इन तीनों में से कुछ भी करने में असमर्थ हो रहा हूँ। तो करूँ क्या?"

बालगोविन्द से और सोचते नहीं बना, उसका मग़ज़ भिन्ना गया। अन्त में वह मन में कह उठा—"जहन्नुम में जाय यह सब सोच-विचार। पीछे की बात पीछे सोची जायगी। इस समय जब निश्चय किया है कि संन्यास लेने का पागलपन न करूँगा तब जितनी छुट्टी है उतने दिन इधर के गाँव-शहर घूमकर देख लूँ।"

बालगोविन्द ने निश्चय किया कि कल सबेरे की गाड़ी से ही आगरा चलकर ताजमहल देखना चाहिए।

× × × ×

कवि शाहजहाँ का अमर मर्मर-काव्य अनेक आदमियों ने अनेक तरह से देखा है। ताजमहल को देखकर बालगोविन्द को ऐसा जान पड़ा कि यह मानो उसी की प्राणप्यारी की मूर्ति है।

प्राणप्यारी! वह कौन है?...सरस्वती? नहीं, यह वह सरस्वती नहीं है। जो सरस्वती उसके स्नेह, प्रेम, आदर, मान को भूलकर लोक-समाज में उसको हास्यास्पद करके, उसके वर्त्तमान और भविष्यत् को अन्धकार में

डुबाकर इस जन्म के लिए उसे छोड़कर चली गई है उसकी बात अब वह सोच नहीं सकता—सोचना भी नहीं चाहता। परन्तु स्वदेश-विदेश में जिस प्रेममयी नारी-मूर्ति के लेकर बालगोविन्द की बहुत सी रातें बिना सोये-परी के स्वप्न की तरह-अनजान में बीत गई हैं, जिसकी आँखों की माधुरी, ओठों की हँसी, शरीर की लीला, हाथों के स्पर्श—सबसे बढ़कर जिसके हृदयभरे अथाह प्यार की स्मृति ने फूल की तरह उसके जीवनवृन्त को पुष्पित कर रक्खा है उसको बालगोविन्द इतनी जल्दी भूल नहीं सका है। इस परिपूर्ण हृदय के कारण ही तो वैराग्य की शून्यता में कूद पड़ने की उसकी चेष्टा एकदम विफल हो गई। उसके जी में आता कि कल की सरस्वती और आज की सरस्वती दोनों एक नहीं हैं। यद्यपि ऐसा सोचना भी नादानी है और इसका कोई उचित कारण भी नहीं है तथापि ऐसा ही एक भाव रह-रहकर उसके मन के इर्द-गिर्द झाँका करता। यहाँ युक्ति-तर्क न लगता, उसका मन ज़बरन बोल उठता। वह सरस्वती और यह सरस्वती एक ही नहीं हैं। दोनों में स्वर्ग-नरक के समान अन्तर है। वह मेरी थी, बिलकुल मेरी थी और यह है..........।

यहीं विचारने में सूत्र टूट जाता। आज की इस सरस्वती को उसका मन अपनी भी नहीं समझ पाता और दूसरे की मानने को भी तैयार न होता। यहीं बहुत अधिक अन्धकार था—अज्ञात अन्धकार था। वह अन्धकार मानों छिपे हुए आँसुओं का ढेर था।

एक-दो-तीन करके कई दिन बीत गये फिर भी बालगोविन्द ताज-महल छोड़कर जा नहीं सका। किसी अज्ञात मोह के आकर्षण से वह रोज़ ताजमहल के पास आता, संगमर्मर के शुभ्र स्वप्न के उस स्निग्ध-शीतल स्पर्श से अपने व्यथित शरीर को सटाकर चुपचाप बैठा रहता और उसके सामने से यमुना का श्यामल जल कल-कल स्वर से बह जाता।

बालगोविन्द ने निश्चय किया कि अब विलल्ले की तरह देश-देशान्तर में भटकते-फिरने से क्या होगा, छुट्टी के बाक़ी दिन यहीं बिताये जायँ और देखा जाय कि तब भी चित्त शान्त होता है कि नहीं।

× × × ×

उस दिन पूर्णिमा की चाँदनी में वह ताजमहल के मर्मर पत्थर पर आ-कर लेट गया था। चबूतरे पर कोट उतारकर उसने तकिया बना लिया। वह लेटे-लेटे देख रहा था कि चाँदनी और ताज मानों आज मिलकर धीरे-धीरे एकाकार हो रहे हैं। मानों कुछ ही देर बाद कौन चाँदनी है और कौन ताज महल, यह बिलकुल पहचान में न आवेगा।

अचानक पास ही किसी की बंसी बज उठी। रात के सन्नाटे में उसका स्वर बड़ा ही मधुर लग रहा था। एक ही तान में मालूम हो गया कि यह ऐसे-वैसे की मुरली नहीं है, किसी प्रवीण की मुरली है।

वंशी बजने लगी मगर उसका सुर कितना उदासीन! मानों वह मुँह की फूँक से नहीं बज रही थी—हृदय की लम्बी साँस से बज रही थी। मानों वंशी ने किसी को किसी समय खो दिया था; आकाश में, वायु में, यमुना की लहरों में, चन्द्रमा की चाँदनी में, ताज की छाया में मानों वह भटकती हुई रो-रोकर किसी को पुकारती फिरती थी। वह रुलाई ऐसी है कि मानों शाहजहाँ की आत्मा भी सदियों के समाधि-शयन से जागकर अकचकाहट के साथ देखेगी कि इतने दिन के बाद पास से सुन्दरता की पुतली मुमताज फिर उसे चकमा देकर ग़ायब हो गई है क्या!

बाँसुरी का क्रन्दन रुक गया। उसके हताश सुर से बालगोविन्द की पलकें भी भीग गई थीं। वह गहरी साँस लेकर धीरे-धीरे उठ बैठा। उसके जी में आया कि इस बाँसुरी बजानेवाले को चलकर देखना चाहिए।

उसने जाकर देखा कि यमुना की ओर मुँह करके एक आदमी चुप-चाप बैठा है।

बालगोविन्द ने उसके पास बैठकर कहा—"क्या कृपा कर आप एक बार फिर बाँसुरी बजावेंगे?"

उस आदमी ने बालगोविन्द की ओर मुँह फेरकर देखा। फिर ज़रा हँसकर बिना कुछ बोले वह बंसी बजाने लगा।

उस बार भी बाँसुरी से निराशा की रागिनी ही निकली। मानों यह मुरली रोना छोड़कर और कुछ जानती ही नहीं।

रोते-रोते बाँसुरी फिर बन्द हो गई। बालगोविन्द और वह आदमी दोनों चुपचाप उदास भाव से पास ही बैठे रहे।

फिर बालगोविन्द ने धीरे-धीरे कहा—"आपकी बाँसुरी के भीतर और कितनी रुलाई भरी है!"

उस आदमी ने मृदु मुसकान के साथ कहा—"आपका मन रखने के लिए मेरी बाँसुरी हँस भी सकती है। सुनिएगा!"

उसने बाँसुरी को फिर ओठों से लगाया।

बालगोविन्द ने रोककर कहा—"नहीं-नहीं, ताज की गोद में हँसी नहीं जमेगी, क्योंकि यह ताज विरही की आँखों के आँसुओं से बना हुआ है।"

उस आदमी ने कहा—"इसी से मेरी बाँसुरी से भी हँसी नहीं निकली। इस दुःख की दुनिया में रुलाई के सुर के सिवा और किसी से मेल भी तो नहीं खाता।"

उसकी बातचीत बालगोविन्द को बहुत पसन्द आई। उसने कहा—"अगर आप बुरा न मानें तो क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?"

"मेरा नाम शिवपूजनसिंह है। मकान बनारस ज़िले के सकलडीहा में है। आपका शुभ नाम-धाम!"

"मेरा नाम बालगोविन्द तिवारी है। मेरा मकान आरा ज़िले के चौसा गाँव में है।"

शिवपूजन के हाथ से बाँसुरी नीचे गिर पड़ी। वह बड़े आश्चर्य के साथ बालगोविन्द की ओर चुपचाप देखने लगा।

"अरेरेरे! देखिए बाँसुरी टूट तो नहीं गई!" यह कहते हुए बालगोविन्द ने बाँसुरी उठाकर शिवपूजन के ठिठके हुए हाथ में दे दी।

इतनी देर में शिवपूजन ने अपने को सँभालकर कहा—"चौसा में बालगोविन्द तिवारी नाम का और कोई आदमी भी रहता है!"

"नहीं, मगर जहाँ मैं नौकरी करता हूँ वहाँ, यानी कानपुर में, मेरे नाम के और एक सज्जन हैं।"

शिवपूजन के चित्त में और कुछ सन्देह नहीं रहा। तब भी उसने बिलकुल निश्चिन्त हो जाने के लिए उससे पूछा—"क्या बरुना में आपकी ससुराल है?"

आश्चर्य से बालगोविन्द ने कहा—"हाँ, मगर यह बात आपको कैसे मालूम हुई?"

शिवपूजन ने बहुत प्रसन्न होकर कहा—"तिवारीजी, आपकी बात का जवाब पीछे दूँगा। इस समय भगवान् की कृपा से जब इस तरह आश्चर्यजनक रूप से आप से भेंट हो गई है तो आपको जाने नहीं दूँगा। जहाँ पर मैं टिका हूँ वह स्थान बहुत नज़दीक ही है। आपको वहाँ तक चलने का कष्ट करना होगा।"

बालगोविन्द कुछ देर तक हक्का-बक्का सा होकर शिवपूजन की ओर देखता रहा। फिर पूछा—"मुझे आपके डेरे पर चलना होगा? लेकिन किस लिए?"

"इसका जवाब मेरे डेरे पर चलने पर ही मिलेगा।"

"आप कौन हैं?"

"मणि खोया हुआ सर्प।"

"इसका मतलब?"

"धीरे-धीरे प्रकट होगा। अब चलिए, देर मत कीजिए।" यह कहकर शिवपूजन बालगोविन्द को दोनों हाथों से पकड़कर एक तरह से ज़बरदस्ती लिवा ले गया। उसकी क़ीमती बाँसुरी ताजमहल के सफ़ेद चबूतरे पर एक काली रेखा के दाग़ की तरह पड़ी रह गई। आनन्द की उमंग में उसका ज़रा भी ध्यान उस ओर नहीं गया।

भ

शीतल पंडित दो दिनों से अपने गाँव के पास एक पुरवा में रहनेवाले यजमान के घर किसी शास्त्रीय अनुष्ठान में लगे हुए थे। वहाँ का काम

निबटाकर आज दोपहर को वे अपने गाँव लौटे। उनके पीछे-पीछे दो आदमी आ रहे थे। उन दोनों के सिर पर बड़ी-बड़ी दो गठरियाँ थीं। एक गठरी में से ताँबे का एक बिलकुल नया गगरा कुछ-कुछ दिखाई दे रहा था। देखने पर यह समझ जाने में देर नहीं लगती कि यजमान के घर ब्राह्मण देवता को जो सामान मिला है वह थोड़ा नहीं है।

कड़ी धूप से बचने के लिए शीतल पंडित सिर पर भींगा गमछा तहाकर रक्खे हुए हैं और ऊपर से छाता लगाये घर की ओर लौट रहे हैं। उनके बायें हाथ में यजमान के दिये हुए कुछ नये कपड़े हैं।

इधर कुछ ही दिनों में शीतल पंडित का चेहरा बहुत उतर गया है, शरीर भी बीमार सा और कृश हो गया है। उनकी आँखें धँस-सी गई हैं। उनका चेहरा देखने से ऐसा जान पड़ता है कि उनके चित्त में रात-दिन कोई असह्य चिता जल रही है।

अब यजमानी करने की उनको तनिक भी इच्छा नहीं है। वे जो कुछ करते हैं उसमें से कुछ तो यजमानों के बहुत आग्रह करने के कारण और कुछ अपने दुखी चित्त को भुलाये रखने के लिए भी।

बड़ी कड़ी धूप है। पैरों के नीचे की धूल आग सी जल रही है। शीतल पंडित और किसी तरफ़ न देखकर सीधे चले आ रहे थे कि एक-ब-एक दाहिनी ओर से आवाज़ आई—किश्त मात। शीतल पंडित समझ गये कि दमड़ी तिवारी की दालान में निठल्ले लोगों का जमावड़ा है। उन्होंने चुपके से चले आने के लिए छाता उस तरफ़ को कर लिया जिससे कि कोई देख न ले। सरस्वती के खो जाने के बाद उन्होंने दमड़ी तिवारी को अच्छी तरह पहचान लिया था। इसी से उसके छिपे व्यंग्य भाव भरे चेहरे पर नम्रता का महान् आडम्बर देखते ही शीतल पंडित के हृदय पर जले पर नमक सा लगता।

मगर काने दमड़ी की जो एक ही आँख है वह साँप की तरह तेज़ है। उसने चील की तरह चीं-चीं आवाज़ से कहा—"शीतल भैया, अरे

शीतल भैया ! ग़रीब की ओर ज़रा कृपादृष्टि किये जाइए। इस तरह ठुकराकर मत जाइए, भैया।"

लाचार शीतल पंडित खड़े हो गये। छाते की आड़ से ही सिट-पिटाकर बोले—"भाई ! धूप में दूर से आने से ज़ोर की प्यास लगी हुई है। इस वक्त और कुछ थोड़े सूझता है, झटपट घर पहुँच जाऊँ तो जी में जी आवे।"

एकाएक दमड़ी ने बगुले की तरह एक-एक पैर आगे बढ़ाते हुए पास आकर घबराहट दिखाते हुए कहा—"ऐं ! आपको प्यास लगी है ! आइए, मेरे घर आइए।"

"अरे भाई, घर के पास तो पहुँच ही गया हूँ। ज़रा नहा-धोकर ठंढा हो लेने पर पानी पिया जायगा।" यह कहकर शीतल पंडित फिर आगे बढ़े।"

दमड़ी ने कहा—"भाईजी ! चले मत जाइए। पानी चाहे मत पीजिए, एक शुभ समाचार तो सुनते जाइए।"

शीतल पंडित ने निराश भाव से दीनता-पूर्वक कहा—"शुभ समाचार का नाम मत लो, भाई। इस जीवन में शुभ और अशुभ दोनों मेरे लिए एक ही बात है।"

दमड़ी ने सुरती फाँकते हुए कुछ हँसकर कहा—"उपाध्यायजी, एक-दम इतने बैरागी मत बन जाइए। अगर मैं सचमुच शुभ समाचार सुनाऊँ तो मुझे आप क्या खिलाइएगा ?"

दमड़ी का रंग-ढंग देखकर शीतल पंडित के मन में सन्देह की बिजली दौड़ गई। दमड़ी अकारण कुछ कहनेवाला जीव नहीं है। अचानक इतना अपनापन दिखाने का क्या कारण है ? उन्होंने उद्विग्न भाव से पूछा—"दमड़ी, तुम क्या कह रहे हो ? क्या तुम लोगों को सरस्वती का कुछ हाल मिला है ? इतने दिन से मैं जो मना रहा था क्या वह हो गया ? क्या सचमुच सरस्वती मर गई ? बताओ, बताओ, इससे बढ़कर शुभ समाचार मेरे लिए और कुछ नहीं हो सकता।"

दमड़ी ने नक़ली सहानुभूति से अपने चेहरे पर यथासम्भव दुःख का भाव दरसाते हुए कहा—"राम-राम! यह क्या कह रहे हैं, शीतल भैया! पिता होकर पुत्री की मृत्यु मनाते हैं!"

शीतल पंडित का सन्देह बढ़ गया। उन्होंने उत्कण्ठित होकर कहा—"तुम जो कहना चाहते हो, झट कह डालो, दमड़ी।"

दमड़ी ने अपनी मुसकुराहट को और मधुर बनाकर कहा—"महादेव सरस्वती को काशी से लेकर लौट आया है।"

शीतल पंडित का कलेजा फटकर दो टूक सा होने लगा। वे दोनों हाथों से कलेजा थामकर वज्राहत की तरह स्तम्भित भाव से खड़े रहे। उनकी आँखों के सामने दोपहर के सूर्य की किरणें भी मानों क्षणभर के लिए अन्धकार में परिणत हो गईं।

जैसे अधमरे चूहे की दशा बिल्ली निर्दयता भरी दृष्टि से देखती है उसी तरह शीतल पंडित की तरफ़ दमड़ी बार-बार देखने लगा।

आश्चर्य का पहला धक्का दूर हो जाने पर बेहद क्रोध और अपमान से शीतल पंडित का चेहरा लाल हो गया। उन्होंने दमड़ी की ओर देखकर थर-थर काँपते हुए ज़ोर से कहा—"अरे महापापी! यही तेरा शुभ समाचार है! तेरे सिर पर वज्र घहरा जाय, तेरा सत्यानाश हो।" अब वे वहाँ से तेज़ी से चले गये। कुछ आगे बढ़ जाने पर उन्होंने दमड़ी की दालान से बहुत से आदमियों का एक साथ हँसना सुना।

अभी तक सचमुच दमड़ी के दल के लोग बड़े कौतूहल के साथ मानों एक अत्यन्त उत्तेजक नाटक का विचित्र अभिनय देख रहे थे। शीतल पंडित के चले जाने पर ख़ूब ज़ोर से हँस लेने पर मुंशीजी ने कहा—"रुपये की गर्मी से उपाध्याय का पैर इतने दिन ज़मीन पर नहीं पड़ता था मगर उसे यह ख़बर नहीं थी कि ऊपर दर्पहारी भगवान् हँस रहे हैं। अच्छा दमड़ी, बताओ तो, अब उपाध्याय क्या करेगा। सरस्वती को घर में रक्खेगा या झोंटा पकड़कर निकाल देगा!"

शीतल उपाध्याय की वह क्रोध-मूर्ति देखकर और अभिशाप सुनकर घमंडी का पापी मन कुछ काँप सा गया था। अब उसने अपने को किसी तरह सँभालकर कहा—"शायद निकाल ही देगा। मगर ठीक कहा नहीं जा सकता। वह जैसे तुरत आगबबूला हो जाता है वैसे ही जल्दी उसका क्रोध दूर भी हो जाता है। फिर हज़ार हो, पिता का चित्त लड़की का मुँह देखते ही क्रोध को भूल भी जा सकता है। जो हो, तुम लोग यहाँ बैठे रहो, मैं तब तक बाबू साहब (ज़मींदार) को यह ख़बर सुना आऊँ।"

एक आदमी ने पूछा—"जाकर क्या कहोगे?"

"कहूँगा कि शीतल पण्डित लौट आये। सरस्वती के आने की ख़बर पहले ही उनके कानों तक पहुँच चुकी है। सिर्फ़ उपाध्याय यहाँ नहीं था इसी से वे दो दिनों से अपना क्रोध दबाये बैठे हैं।"

सबके चेहरे पर भारी सन्तोष और ख़ुशी का भाव दिखाई पड़ा। उस गाँव में शीतल पण्डित की दिन-दिन बढ़ती देखकर जो डाह से जल रहे थे, उनके हाथ आज अपने जी की जलन मिटाने का बड़ा सुअवसर लग गया है।

म

शीतल पण्डित जिस समय बड़ी सी चिनगारी की तरह घर में आकर घुसे उस समय उनकी स्त्री महादेव और सरस्वती के सामने भोजन की थाली रख रही थी।

शीतल पण्डित को पहले सरस्वती ने देखा। वह उसी दम पीढ़े से उठकर 'बाबूजी' कहकर रोती हुई आई। उसने दोनों हाथों से शीतल पण्डित के पैर पकड़ लिये।

शीतल पण्डित की पत्नी भी दुःख के बाद के आनन्द से रो उठी। बोली—"तुम्हारी सरस्वती को भगवान् ने लौटा दिया।"

शीतल पण्डित ने एक बार सरस्वती की ओर और एक बार पत्नी की ओर देखा। उनकी वह दृष्टि पागल की सी थी। फिर उन्होंने महादेव की ओर देखकर गरजते हुए कहा—"महादेव!"

उनकी उस कड़ी आवाज़ से डर कर महादेव ने धीरे से कहा—"हाँ पिताजी !"

शीतल पण्डित की स्त्री पति का भाव देख, घबराकर, देवी-देवताओं को मनाने लगी। शीतल पण्डित का क्रोध मशहूर था। क्रोध की झोंक में वे बहुधा ऐसा काम कर बैठे हैं जिसके लिए पीछे उनको पछताना पड़ा है।

शीतल पण्डित ने तीक्ष्ण स्वर से पूछा—"महादेव ! सरस्वती तुझे कहाँ मिली ?"

महादेव ने धीरे से पूछा—"शिवपूजनसिंह के मकान पर।"

शीतल पण्डित ने आँखें तरेरकर पूछा—"शिवपूजन ! वह कौन है ?"

पिता से बात करते-करते महादेव की हिम्मत टूट गई। उसने बड़ी दीनता से माता की ओर देखा।

पण्डिताइन ने पति की ओर बढ़कर कहा—"वह लम्बी कहानी है। मैं सरस्वती और महादेव की ज़बानी सब सुन चुकी हूँ। सुनो !"

शीतल ने डाँटकर कहा—"तुम चुप रहो। इन लोगों की जिस बात पर तुमने विश्वास कर लिया है उस पर गाँव के और आदमी तो तुम्हारी तरह इतनी जल्दी विश्वास नहीं न कर लेंगे।"

"क्यों विश्वास नहीं करेंगे ?"

"क्यों नहीं करेंगे यह भी क्या खोलकर कहना होगा ? क्योंकि वे लोग तुम्हारी लड़की को बदचलन कहते हैं।"

अभी तक सरस्वती धरती में पड़ी हुई देवी की मूर्ति की तरह शीतल के पैरों में पड़ी आँसुओं से पृथ्वी को भिगो रही थी, अब उसने चुटीली नागिन की तरह एक-ब-एक खड़ी होकर कहा—"बाबूजी-बाबूजी ! क्या तुम भी मुझे वैसी ही समझते हो ?"

शीतल ने गम्भीर स्वर से सिर्फ़ 'हूँ' कहा।

सरस्वती की आँखों में बिजली सी दौड़ गई। उसने गर्व के साथ सिर उठाकर तीव्र स्वर से कहा—"तुम भी ! तुम—मेरे पिता—तुम भी इस बात पर विश्वास करते हो ?"

शीतल पण्डित सरस्वती की यह अकल्पित तेजस्विनी मूर्ति देखकर विस्मित हुए मगर वह विस्मय उनको ज़रा भी डिगा न सका। उस दिन की वह मर्मस्पर्शी बात आज भी उनके हृदय में गड़ी हुई है जिस दिन काशी में धनराज के मेस में जाकर पलटू के मुँह से उन्होंने सुना था कि धनराज के साथ सरस्वती अकेली पछाँह की तरफ़ चली गई है। उसके बाद यह शिवपूजन! वह कहाँ का कौन है! उसके घर पर सरस्वती क्यों रही! इससे बढ़कर और क्या सबूत हो सकता है! उन्होंने चिल्लाकर कहा—"हाँ, मैं भी विश्वास करता हूँ। जिस बात को स्वयं जाकर जान आया हूँ उस पर विश्वास न करना ही आश्चर्य है। इतने दिनों के बाद तू लौटकर फिर यहाँ क्यों आई! तू मर क्यों नहीं गई! क्यों तू..."

हाथों से दोनों कान ढककर आँखें मूँदकर व्याकुलता भरी आवाज़ से सरस्वती बोल उठी—"अब सुना नहीं जाता। पिताजी! बस-बस! बहुत हो चुका। भगवन्! तुम्हारे जगत् में स्त्री इतनी असहाय है! ओफ़!" सरस्वती लड़खड़ाकर गिरना चाहती थी कि माता ने झटपट जाकर उसे थाम लिया।

शीतल पण्डित ने सरस्वती की यह अवस्था देखकर भी उस पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेरकर अविचलित स्वर से कहा—"मेरे घर में कलङ्किनी के लिए स्थान नहीं है। यहाँ अब एक क्षण भी मत ठहर। चली जा, चली जा। अभी चली जा। नहीं तो......।"

पण्डिताइन ने रोते हुए कहा—"तुम्हारा क्या पत्थर का कलेजा है! ऐसी बात ज़बान पर मत लाओ।"

शीतल ने उसी अटल भाव से घुड़ककर कहा—"महादेव की माँ! जिस अपराध से रघुराजसिंह ने अपने पुत्र का मोह छोड़ दिया है उसी अपराध की अपराधिनी इस पापिनी को मैं किस मुँह से घर में रक्खूँगा!"

"अजी रघुराजसिंह ने छोड़ दिया है इससे क्या समाज भी धनराज को ठुकरा देगा ! वह लड़का है और सरस्वती लड़की है। इस सङ्कट में तुम साथ नहीं दोगे, रक्षा नहीं करोगे, तो कौन करेगा !"

शीतल पण्डित ने रूखी हँसी हँसकर कहा—"एक व्यक्ति देखेगा, उसका नाम है यमराज। अगर मेरे रक्त की एक बूँद भी सरस्वती के बदन में हो तो यह जाकर उन्हीं की शरण ले।" यह कहते-कहते शीतल के नेत्रों से गर्म आँसू गिरने लगे।

सरस्वती ने माता की गोद से अपने को छुड़ा लिया। उसने पिता की ओर मुँह करके शान्त मगर दृढ़ भाव से कहा—"अच्छी बात है पिताजी ! यही होगा। तुम सबने मिलकर मुझे बिना अपराध के दण्ड दिया है। देखूँ, यमराज के यहाँ जाकर सचमुच उनकी शरण पाती हूँ कि नहीं।" इसके बाद माता की ओर मुँह करके धीरे-धीरे बोली—"माँ! अगर तुम अपने दामाद का पता पा जाओ तो उनसे मेरा यह अन्तिम निवेदन कह देना कि कलङ्किनी कहलाकर मरने पर भी मेरी पति-भक्ति किसी दिन सावित्री से ज़रा भी कम नहीं रही।" कहते-कहते उसका गला भर आया, आँखों में फिर आँसू आ गये, मगर बड़ी हिम्मत से मन की सारी व्याकुलता को दबाकर माता की सारी रोक-टोक को दूर कर वह तेज़ी से दरवाज़े की ओर बढ़ गई। फिर न जाने क्या देखकर वह चौंककर खड़ी हो गई।

साथ ही साथ सबको चकित करता हुआ धनराज वहाँ आ पहुँचा। उसने घर के भीतर आकर सरस्वती के सामने खड़े होकर कहा—"बहन ! मैं पहले ही जानता था कि ऐसा होगा। इसी से तुमको बिदा करके मैं काशी में निश्चिन्त न रह सका। मैं तुम्हारी खोज में चौसा गया था। वहाँ से सब हाल सुनकर यहाँ दौड़ा आया हूँ।"

शीतल पण्डित को अपनी आँखों पर ही विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि धनराज हिम्मत करके मेरे घर के अन्दर पैर रख सकता है। दोपहर की कड़ी धूप में रास्ता चलकर

थकी-माँदी और भूखी-प्यासी उनकी देह योंही शिथिल हो गई थी। तिस पर यह विषम उत्तेजना और अनेक भावों का घात-प्रतिघात! इस अन्तिम धक्के से एक बार ही विकल होकर उन्होंने हाँफते-हाँफते कहा—"अब सहा नहीं जाता भगवन्! इस अग्नि-परीक्षा से मेरी रक्षा करो नाथ।" यह कहकर वे ज़मीन पर बैठ गये। उन्होंने घुटनों के बीच अपना मुँह छिपा लिया।

ठीक इसी समय मकान के बाहर से किसी ने गम्भीर स्वर से पुकारा—"उपाध्यायजी हैं!"

शीतल पण्डित पत्थर की मूर्ति की तरह पड़े रहे, कुछ बोले नहीं।

धनराज ने सरस्वती की ओर देखकर कहा—"मेरे पिताजी पुकार रहे हैं।"

य

बालगोविन्द जब शिवपूजन के वासस्थान से लौटकर रास्ते में आया उस समय बहुत रात हो गई थी। उस सुनसान स्थान में उसे अपनी चिन्ता के उलझे हुए सूत का छोर ढूँढ़ने का अवसर मिला जिससे उसके चित्त में कुछ ताज़गी आ गई।

ताजमहल के गुम्बज़ के ऊपर की चाँदनी की मुसकुराहट मानो उससे बार-बार कहने लगी—"दुनिया की कोई भी चीज़ नफ़रत के लायक़ नहीं है। आदमी अपनी क्षुद्रता की छाप लगाकर उसको काला समझता है, अकारण उससे दूर हटना चाहता है।"

सरस्वती की बात याद करके उसका चित्त जैसे एक ओर आनन्द से नाचने लगा उसी तरह दूसरी ओर लज्जा और ग्लानि की चोट खाने लगा। उसे अपनी माता का वचन याद पड़ा। शास्त्र ठीक ही कहता है—हज़ार अशिक्षित निरक्षर होने पर भी माता माता ही हैं। वे आरम्भ से ही कहती आई हैं—"गुमनाम चिट्ठी पर विश्वास करना बड़ी भारी बेवक़ूफ़ी है।"

डेरे पर जाने की इच्छा नहीं हुई। वह धीरे-धीरे लौटकर फिर उसी जगह आ बैठा जहाँ पर शिवपूजन से भेंट हुई थी।

बालगोविन्द ने सोचा—यही तो बात है। इस उल्लू को तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता! इतनी रोशनी, इतनी शोभा से वह क्यों इस तरह वंचित है! अच्छा, वह स्वयं वंचित है या किसी की इच्छा से वंचित है! कौन जाने! शायद कोई नहीं जानता। जो कोई जो कुछ कहता है शायद अपने मन की गढ़ी हुई बात ही कहता है।

फिर वह बार-बार अपनी ही बात सोचने लगा।

बीमारी की ख़बर पाकर सरस्वती घबराहट से सारी भय-भावना और निन्दा की परवा छोड़कर मेरी माता की सेवा करने के लिए दौड़ी गई है। और मैं! कायर, कपूत!

बालगोविन्द की आँखों के सामने सरस्वती का चित्र पूरे सौन्दर्य से जगमगा उठा। रोगिणी की खाट के पास पति-परायणा मेरी सती साध्वी स्त्री सरस्वती बैठी है। भोजन और नींद बिना उसका शरीर क्षीण हो गया है। यही तो संसार है! यही तो स्वर्ग है। इसी से आदमी किसी तरह इसको छोड़ना नहीं चाहता। छोड़ भी नहीं सकता।

गहरी प्रेम-प्रीति और कृतज्ञता से उसका हृदय आलोकित हो उठा, उसकी आँखें भी डबडबा आईं। उसके जी में आया कि अब मेरा प्रथम कर्तव्य यही है कि बिना विलम्ब जाकर सरस्वती की सहायता की जाय। फिर वह मन ही मन अपने को सरस्वती के पास ले गया। मानों वह सरस्वती के दोनों कोमल हाथ पकड़कर कह रहा है—"सरस्वती! मैं क्या तुम्हारे ऊपर सन्देह कर सकता हूँ!"

इतने में पीछे से पहरेदार ने पुकारा—"कौन है!"

बालगोविन्द ने कहा—"मैं एक मुसाफ़िर हूँ।"

पहरेदार ने कहा—"बाबूजी! आप बाँसुरी भी बजाते हैं न!"

बालगोविन्द ने देखा कि शिवपूजन की बाँसुरी पड़ी हुई है। उसको हाथ से उठा लेने पर चौकीदार हँसकर दूसरी ओर चला गया। उसकी

हँसी का अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं है कि दुनिया में न जाने कितने पागल हैं।

बाँसुरी को ऊपर से नीचे तक देखकर बालगोविन्द ने मन ही मन सोचा—"यह चीज़ वही है मगर मेरे फूँकने से कैसी भद्दी आवाज़ निकलेगी। कैसी शुभ घड़ी में इस आदमी से मुलाक़ात हो गई। उसने मेरी सरस्वती को बचाया है। मेरी चीज़ मुझे सौंपने के लिए कानपुर तक आया था। मेरी बदनसीबी!"

सरस्वती के लिए उसका मन अधीर हो उठा। उसके जी में आया कि अब देर करने की ज़रूरत नहीं है। क्या जाने, क्या होते-होते क्या हो जाय। आज रात की पिछली गाड़ी से ही रवाना हो जाऊँ। लेकिन यह बाँसुरी कैसे लौटाऊँगा? अच्छा, यह कुछ दिन मेरे ही पास क्यों न रहे। मैं भी एक दिन उसकी चीज़ उसको लौटाऊँगा।

२

धनराज के गले की आवाज़ सुनकर रघुराजसिंह बाहर खड़े नहीं रह सके। उनके आश्चर्य की सीमा न रही और क्रोध इतना बढ़ गया कि उनके घुटने थर-थर काँपने लगे।

वे जब दालान में आकर खड़े हुए तब ऐसे जान पड़े मानों स्वयं प्रलय शरीर धारण किये खड़ा है। गुस्से से आँखें लाल और बड़ी-बड़ी हो गई थीं। ललाट की रग-रग धक-धक कर रही थी। गङ्गा-जमनी मूँछें भी फूलकर ड्योढ़ी हो गई थीं।

रघुराजसिंह ने चिल्लाकर कहा—"पाजी, बदमाश, गधा, सूअर, कम-बख़्त, बेहया! तू यहाँ क्या कर रहा है?"

धनराज जानता था कि उसके पिता का क्रोध कैसा प्रचण्ड है और उसने मन ही मन यह भी तय कर लिया था कि किसी दिन उसको इसका भयानक धक्का सहना ही पड़ेगा। इस कारण वह किसी बात का उत्तर न देकर ज़रा तिरछा खड़ा होकर ज़मीन की तरफ़ देखने लगा। वह

अपने को कितना सँभाल रहा है, यह उसके अपने दोनों हाथ जेब में रखने के ढङ्ग से साफ़ ज़ाहिर हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि बग़ल के नीचे से उसका कोट नीचे को ही लटका जा रहा है।

पुत्र को चुप देखकर भी सिंहजी शान्त नहीं हुए बल्कि उनके क्रोध का पारा और चढ़ गया। उन्होंने शीतल पंडित की ओर मुँह करके कहा—"इस गधे को आपने अपने मकान के अन्दर क्यों घुसने दिया! इसको जूते मारकर बाहर निकाल दीजिए, ज़रा भी देर मत कीजिए; अभी निकालिए।"

धनराज ने पिता की ओर मुँह करके अकम्पित स्वर से कहा—"अगर दूसरे के मकान में घुसना दोष है तो अकेला मैं ही दोषी नहीं हूँ।"

इस तरह का जवाब सुनने की ज़रा भी आदत ज़मींदार साहब को नहीं थी। इससे वे बेटे की गुस्ताख़ी से एकदम चकित हो गये। एक बात उनको याद आई कि पुत्र से इस तरह अपमानित न होने का उपाय उनके ही हाथ में था।

इतने में सरस्वती ने पुकारा—"काका!"

रघुराजसिंह ने एक बार उसके मुँह की ओर देखकर झटपट मुँह फेर लिया जिससे ज़ाहिर हुआ कि इस कुल-कलंकिनी के साथ बातचीत करना भी उचित नहीं है, यही उनका दृढ़ और स्थिर मत है।

मगर सरस्वती ने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। वह इस प्रकार अनर्गल बक गई—

"आप लोगों से भारी भूल हो रही है। आप लोग सब बातें जाने बिना ही धनराज भैया को अपराधी मान रहे हैं। हम लोगों ने रत्ती भर भी अपराध नहीं किया है। इसी से हम लोग किसी से डरते भी नहीं। अगर धर्म के नाम पर, सत्य के नाम पर, आप लोग पता लगावें तो समझ जायँगे कि आदमी झूठमूठ कैसी भूल कर बैठते हैं। आदमी, आदमी का न्याय नहीं कर सकता, इसीसे मैं न्याय के लिए प्रार्थना करके यह बात नहीं कह रही हूँ। मैं यह सोचकर यह बात कह रही हूँ कि हम लोगों के साथ

अन्याय करके, ख़ासकर निर्दोष धनराज भैया के साथ अन्याय करके, आप स्वयं अपराधी न हो जायँ। ऐसा एक दिन आवेगा जिस दिन यह झुठाई का क़िला टूटकर चकनाचूर हो जायगा मगर उस दिन इस दुनिया में आप लोगों के पश्चात्ताप की सीमा न रहेगी।"

शीतल पंडित से सहा नहीं गया। उन्होंने शेर की तरह झपटकर सरस्वती की गर्दन पकड़ी और ज़ोर से घसीटते हुए उसे खिड़की के रास्ते बाहर कर दिया और कहा—"हरामज़ादी! इतने ही दिनों में नाटक करना सीख आई! रसातल को चली जा। मेरे घर में तेरे लिए स्थान नहीं है।"

इसके बाद उन्होंने ज़ोर से खिड़की का दरवाज़ा बन्द करके ताला लगा दिया।

सभी लोग शीतल पंडित की कार्रवाई देखने में लगे थे। इस बीच में धनराज कब किस तरह बाहर निकल गया, यह कोई देख न सका।

रघुराजसिंह जिस स्तब्ध और गम्भीर भाव से आये थे उसी भाव से घर लौट गये। उस समय उनकी समझ में नहीं आया कि घड़ी भर का अनुभव एक दिन जीवन की दुर्लभतम वस्तु बन जायगी।

× × × ×

कुछ देर के लिए सरस्वती अपने को बिलकुल निःसहाय समझकर लगातार रोती रही। मगर रोने से आदमी का दिन नहीं कटता। वह अचानक हुए दारुण आघात से घायल अपने मन को फिर सँभालने लगी।

उसके लिए सबसे अधिक भय की वस्तु थी—आदमी के ढाढ़स या सहानुभूति की बात। इसी से वह धीरे-धीरे उठकर बग़ीचे के एक कोने में, जो घने बाँसों का जङ्गल था, घुस गई। वह अच्छी तरह जानती थी कि जिसको प्राण का डर है वह किसी तरह वहाँ न आवेगा।

वहाँ बैठकर उसने ख़ूब अच्छी तरह सोच-विचार लेना चाहा कि अब क्या करना चाहिए। इसके बाद उसने दोनों हाथ जोड़कर एकाग्र चित्त से पुकारा—"हे भगवान्! मैंने सुना है कि तुम निराश्रयों के

आश्रय हो। अब मुझे दिखा दो कि मेरे लिए कौन-सा मार्ग है। मैं कुछ भी नहीं जानती।"

ठीक उसी समय उसे शीतल उपाध्याय की बात याद आई। "क्या सचमुच यमराज ही अब मेरे अन्तिम आश्रय हैं?"

बड़ी दहशत से उसका शरीर और मन काँप उठा। "आत्म-हत्या? नहीं, ऐसा मैं हरगिज़ नहीं कर सकती। सुना है कि आत्महत्या करने से आत्मा को अनन्त काल तक नरक में रहना पड़ता है। आत्म-हत्या क्यों करूँ! मैंने क्या किया है! मगर इस बाँसों के वन में भी तो रहना सम्भव नहीं है। कुछ उपाय तो करना ही पड़ेगा। कोई आश्रय तो चाहिए ही।"

सरस्वती गाल पर हाथ रखकर फिर सोचने लगी। "आह! आज अगर पतिदेव यहाँ होते! वे अवश्य ही ऐसा अन्याय न करते।

"न करते! यह बात क्या ठीक है! अच्छा, इस तरह संसार त्यागकर वे संन्यासी बनकर हिमालय पहाड़ पर क्यों चले गये! शोक से! या दुःख से!" सरस्वती ने धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा—"आदमी को समझना कितना कठिन है। सब कुछ अनुमान ही तो है। कौन कह सकता है कि अनुमान सच ही ठहरेगा।"

उसने लम्बी साँस लेकर कहा—"अब सोचते-विचारते नहीं बनता। कब शाम होगी, कब रात होगी, कब गाँव के लोग सो जायँगे। तब मैं जिधर दोनों आँखें जायँगी उधर ही चली जाऊँगी।"

सरस्वती घुटनों के बीच सिर झुकाकर कुछ देर बैठी रही। मन और सोचना-विचारना नहीं चाहता। जो होना है वह होगा। आदमी जब अपनी बाबत सोचते-सोचते ऊब जाता है तब दूसरे की बात आपसे आप चली आती है।

इसी से सरस्वती धनराज की बात सोचने लगी। "काका ने उसको त्याग दिया है मगर वह पुरुष है, उसको क्या चिन्ता है। सभी लोग तो बाप से सम्पत्ति नहीं पाते। पुरुष-जाति कितनी स्वाधीन है और हम स्त्रियाँ कैसे बन्धन से बँधी हैं! हाय!"

सरस्वती को ज़रा झपकी आ गई। वह अचानक चौंक पड़ी और चारों ओर देखकर बोली—"कहाँ, वे तो नहीं आये! अरे राम! मैंने सपना देखा क्या? यह तो वही बाँस-वन है। उसी तरह तो बैठी हूँ।" भीषण उद्वेग उसके हृदय-मन को व्यथित करके मानों उसकी साँस बन्द करने पर तुला हुआ है। उसकी आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी।

ञ

बालगोविन्द जिस ट्रेन में सवार हुआ था वह पैसेंजर थी, यानी उसका चलना ही कम था, रुकना अधिक। एक बार वह राह में किसी स्टेशन पर रुकी।

दूसरे प्लेटफ़ार्म पर एक और गाड़ी आकर लगी। उसमें से कितने ही मुसाफ़िर उतरकर इसी गाड़ी में सवार होने लगे।

एक बुढ़िया ने आकर बालगोविन्द से पूछा—"क्यों भैया! यह गाड़ी क्या बक्सर जायगी?"

बालगोविन्द के हाँ कहते ही वह झट दूसरे दर्जे के एक डब्बे में सवार हो गई। अन्त में काली वर्दीवाले एक टिकट-कलेक्टर ने आकर उस डब्बे से उस बेचारी को उतरने के लिए कहा। बुढ़िया घबराकर बोली—"मुझे रहने दो भैया! मैं एक कोने में पड़ी रहूँगी। उतरने से गाड़ी छूट जायगी।"

टिकट-कलेक्टर उसे उतरने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था। बालगोविन्द ने जाकर समझाया कि आप दूसरे डब्बे में सवार हो जाइए। इस डब्बे का महसूल बहुत ज़्यादा है।

बुढ़िया ने उतरकर कहा—"तो भैया! मुझे भी अपनी ही गाड़ी में बिठा लो। मुझे कुछ मालूम नहीं है। सङ्कट में पड़कर अकेली चली आई हूँ।"

"अच्छा तो आइए"—कहकर बालगोविन्द आगे बढ़ा। गाड़ी छूटना ही चाहती थी। उसके हिलते ही बालगोविन्द ने सामने

का एक दरवाज़ा खोलकर बुढ़िया को चढ़ाया और फिर उसी में आप भी जा बैठा।

बुढ़िया की उम्र प्रायः पचास वर्ष की होगी। चेहरे का रंग किसी समय साफ़ था मगर अब दुःख-कष्ट से वैसा नहीं रह गया है। सिर का एक भी बाल पका नहीं है मगर हैं सभी छोटे-छोटे। हाथ और नाक पर गोदने के दाग़ हैं।

उतरने-चढ़ने की घबराहट मिट जाने पर बुढ़िया ने पूछा—"तुम कहाँ जाओगे भैया !"

बालगोविन्द ने कहा —"मैं चौसा जाऊँगा।"

बुढ़िया ने कहा—"चौसा ! हाय ! हाय ! याद आते ही अफ़सोस होता है। वहाँ मेरी दूर के रिश्ते की एक मौसी रहती है। बड़ा लायक़ लड़का था मगर न जाने भगवान् के दरवाज़े क्या क़सूर हो गया कि लड़के की मति मुँहझौंसी बहू के लिए गड़बड़ा गई। सुनने में आया है कि उसकी स्त्री नैहर के ज़मींदार के लड़के के साथ निकल गई। यह बात सुनकर मौसी का लड़का दंड-कमण्डल लेकर न जाने कहाँ चला गया। बेचारी मौसी का भाग्य फूट गया। ऐसा लायक़ लड़का था ! सुनती हूँ कि पछाँह में साढ़े तीन सौ रुपया तनख़ाह पाता था। सब छोड़-छाड़कर चला गया। वह अपनी स्त्री को कितना प्यार करता था मगर उसकी स्त्री ने उसका प्यार कहाँ माना ! सुनती हूँ कि बहू बड़ी ख़ूबसूरत है। मगर इससे क्या ! हमारे देश में एक से एक ख़ूबसूरत लड़कियाँ पड़ी हैं, कौन पूछता है। साढ़े तीन सौ रुपया क्या थोड़ा होता है।"

जैसे दूसरे के बाल लगाये अपना चेहरा आइने में देखने पर हँसी नहीं रुकती ठीक वैसी ही दशा बालगोविन्द की हुई अपनी अत्युक्ति भरी कहानी सुनकर। इस दूर की रिश्तेदारिन को सबसे बड़ा दुःख साढ़े तीन सौ रुपये की नौकरी के लिए है। बालगोविन्द ने मन ही मन हँसकर कहा—इस देश के बालक, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी को नौकरी कितनी प्यारी है !

उसने बुढ़िया से कहा—"आप काशी में रहती हैं। आपको यह सब हाल कैसे मालूम हुआ?"

बुढ़िया ने हँसकर कहा—"दूर रहकर अपने आदमियों के लिए मन कितना छटपटाया करता है यह तुम मर्द लोग क्या जानो। फिर एक और कारण है। मेरी मौसी को वह बहू ज़रा भी पसन्द नहीं थी। वह अपने लड़के का दूसरा ब्याह कर देना चाहती थी। मेरी फुफेरी ननद की एक लड़की के साथ बातचीत भी चल गई थी मगर अब तो न वह राम रहे और न वह अयोध्या ही रही। उस लड़की का ब्याह शायद अगले माघ में हो जायगा।"

बालगोविन्द ये सब बातें ख़ूब बरदाश्त कर रहा था अर्थात् वह मन ही मन पक्का समझ रहा था कि सरस्वती इस समय हमारे घर पर मेरी माता की सेवा-शुश्रूषा कर रही है।

बालगोविन्द चौसा पहुँचने पर गाड़ी से उतर गया। बुढ़िया आगे बढ़ गई। बालगोविन्द एक्का करके गाँव को चला।

गाँव जितना ही नज़दीक आता जाता था उतना ही उसका मन उत्कण्ठित होता जाता था। माँ बीमार हैं। अब उसकी क्या हालत है! मलेरिया बुख़ार ही होगा। दो-चार दिन में अच्छी हो जायँगी।

"अगर मेरी स्त्री को मा ने घर में न रखकर निकल दिया हो! नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मुझे बिना जताये······मगर मैं था कहाँ? ओह! मैंने कितनी भारी भूल की है। भगवन्! भगवन्! ऐसा न हो।"

जब गाँव में पहुँचा तब रात हो गई थी। किसी से भेट होने का समय नहीं है। बालगोविन्द भगवत् का नाम लेते हुए डाक्टर जी के दवाख़ाने के पास आ पहुँचा। वहाँ एक्का रोककर देखा कि डाक्टर नहीं हैं। उनका कम्पाउण्डर बेंच पर बैठकर कोई अख़बार पढ़ रहा था।

बालगोविन्द ने ज़ोर से पूछा—"क्यों दीनदयाल! डाक्टर साहब कहाँ हैं?"

"वे अभी एक रोगी को देखने गये हैं। आप कब आये? ज़रूरत हो तो आने पर उनसे कह दूँगा।"

बालगोविन्द ने कहा—"नहीं, ज़रूरत नहीं है। मेरी माँ की तबीयत कैसी है?"

"उनको .कुनैन दी जा रही है।"

बालगोविन्द आगे बढ़ा। मकान के सामने उसकी छाती धड़कने लगी।

एक्केवान के आवाज़ देने पर यशोदा ने स्वयं आकर दरवाज़ा खोला। यशोदा बालगोविन्द को देखती रही। फिर फूट-फूटकर रोने लगी।

बालगोविन्द एक्केवान को विदा करके माँ को भीतर ले गया। वहाँ रुलाई के साथ-साथ उसकी बातों से यह मालूम किया कि कुतिया आई थी। यहाँ से दुरदुराई जाने पर बाप के घर चली गई है।

बालगोविन्द कुछ न कहकर धीरे-धीरे घर से निकला। अब उसने बरुना का रास्ता पकड़ा। जैसे भूखा-प्यासा आया था वैसे ही चल पड़ा। उसके पैर के नीचे से धरती मानो खिसकी जाती थी, फिर भी वह पैदल ही चला जा रहा था। वह थक गया। उसके पैर आगे नहीं बढ़ते थे। वह एक ऊँचे टीले पर बैठकर बरुना गाँव के उस लम्बे रास्ते की ओर देखने लगा। यह मंज़िल उसको जैसे हो वैसे तय करनी ही होगी।

कुछ देर सुस्ताकर वह फिर चला मगर अब तो चला नहीं जाता। भगवान्, पैर तो भारी पत्थर हो रहे हैं। वह नीम के एक छोटे से पेड़ के नीचे बैठ गया। चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई थी और सामने लम्बा रास्ता था। बालगोविन्द ने आँखें मूँदकर ज़रा विश्राम किया, फिर उठा तो देखा कि कोई उसी रास्ते से तेज़ी से चला आ रहा है। स्त्री है क्या?

बालगोविन्द के झटपट उठने से कुछ सूखे पत्ते खड़खड़ा उठे। इससे वह स्त्री पास के अरहर के खेत में जा छिपी। बालगोविन्द चुपचाप खड़ा हो गया। कुछ देर बाद वह स्त्री बाहर निकलकर फिर चलने लगी।

बालगोविन्द के मुँह से अचानक आवाज़ निकल पड़ी—"कौन जा रही है, सरस्वती!"

यह आवाज़ सुनते ही सरस्वती मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

बालगोविन्द ने आगे बढ़कर उसे उठाया। उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे।

५

बालगोविन्द को रामायण-वर्णित सीता की अग्नि-परीक्षा याद आई मगर क्षण भर में ही यह विचार दूर हो गया। अन्तर्यामी ने कहा—"अग्नि-परीक्षा नहीं, अज-विलाप।"

बालगोविन्द आँसुओं का वेग सँभालकर मूर्च्छित सरस्वती को होश में लाने की चेष्टा करने लगा। उसने सरस्वती के घूँघट हटे मस्तक को उठा कर उसके नीचे, तकिये का काम देने के लिए, अपनी चादर तह लगाकर रक्खी। फिर थोड़ा सा जल ढूँढ़ने की कोशिश करने लगा। इतने में बादल के हट जाने पर सरस्वती के निर्मल मुखड़े पर चाँदनी आ पड़ी। बालगोविन्द उठना चाहता था मगर मुग्ध सा होकर बैठ गया।

वही सरस्वती है। ब्याह के पहले घाट पर जिसका कमल-समान पवित्र सुन्दर मुखड़ा देखकर बालगोविन्द का संन्यासी मन संसारी हो गया था, वही सरस्वती है। वैसी ही सुन्दर है, वैसी ही निर्मल है। सोहाग-रात को उसका कोमल मुखड़ा जैसा देखा था, उसे जान पड़ा कि वह मुखड़ा आज भी वैसा ही है, वैसा ही निर्मल है, वैसा ही निष्कलंक। ब्याह के बाद मायके से गौने आने पर सरस्वती इसी तरह एक दिन बालगोविन्द के, चाँदनी में बिछे हुए, बिस्तरे पर सो गई थी। उस दिन बालगोविन्द मित्रों की मजलिस से, उन लोगों के सामने अपने चित्त का बल दिखाने के लिए, कुछ अधिक रात गये घर लौटा। कमउम्र सरस्वती दरवाज़ा खुला छोड़कर लेटे-लेटे अन्त में सो गई थी। चाँदनी में सोई हुई

सरस्वती को देखकर उस दिन बालगोविन्द का विभोर चित्त अपने ओठों को उसके अधरों की ओर धीरे-धीरे ले गया था। उसे ऐसा जान पड़ा कि आज भी वैसा ही होना चाहता है। और यह बात भी अच्छी तरह समझ गया कि जो होना चाहता है उसको रोकने की शक्ति स्वामी परमानन्द के प्रिय शिष्य बालगोविन्द तिवारी में ज़रा भी नहीं है। मूर्च्छिता सरस्वती के दोनों अधरों के आकर्षण से वैरागी बालगोविन्द की गर्दन धीरे-धीरे झुकने लगी। गेरुये रङ्ग पर गुलाबी आभा आ गई। ममता की सुप्त वीणा के सभी तार मानों एक साथ बज उठे।

ठीक इसी समय मूर्च्छित सरस्वती का शरीर कुछ हिला। विभोर बालगोविन्द को होश हुआ। उसने देखा कि सरस्वती ने आँखें खोल दी हैं। मूर्च्छा-नागिन का नाग-पाश खुल गया है। उसके असमाप्त चुम्बन के चुम्बक आकर्षण से सरस्वती को फिर चैतन्य प्राप्त हो गया है। बाल-गोविन्द ने धीरे-धीरे पुकारा—"सरस्वती!" सरस्वती कुछ बोल न सकी। शायद उसमें बोलने की शक्ति भी नहीं थी। उसकी खुली आँखें आँसुओं से भर गईं और टप टप आँसू गिरने लगे।

बालगोविन्द बोलना चाहता था मगर आँसू उसकी आवाज़ रोक रहे थे। वह कुछ बोल न सका। उसके आँसू सरस्वती के शरीर को सींचने लगे। इस तरह कुछ समय में जब भाव का पहला आवेग कुछ शान्त हुआ तब बालगोविन्द ने भरी आवाज़ से कहा—"क्यों रोती है, सरस्वती! मैं शिवपूजनसिंह की ज़बानी सब सुन चुका हूँ।"

सरस्वती ने अपनी हरिण की सी बड़ी-बड़ी आँखें फैलाकर कहा—"सुन चुके हो!.. ऐसी विपत्ति किसी शत्रु पर भी न पड़े।" यह कहकर वह धीरे-धीरे उठ बैठी और अपनी काशी-यात्रा का इतिहास सुनाने लगी। बालगोविन्द का मन उसके बेजाने सरस्वती की रिपोर्ट के साथ शिवपूजनसिंह की रिपोर्ट पद-पद पर मिलाता जा रहा था और मिलती देखकर ख़ुश हो रहा था। जिस समय यह घटना बालगोविन्द को साफ़-साफ़ मालूम हो गई, उस समय मन ही मन लजित होकर उसने

कहा—"बस बस, रहने दो। तुम्हें कष्ट हो रहा है। तुम इस समय कमज़ोर हो गई हो और मैं सब कुछ सुन चुका हूँ।"

मगर सरस्वती ने उसकी इस बात पर कुछ सकुचाकर पूछा—"तो तुमको मुझसे घृणा नहीं है? मुझ पर अविश्वास नहीं है?" अन्तिम वाक्य कहते-कहते उसका गला काँप उठा। आँखें फिर छलछला आईं। बालगोविन्द ने स्नेह-भरे अथ च दृढ़ स्वर से पूछा—"ज़रा भी नहीं। अविश्वास करता तो आगरे से धुरियाये पैर तुम्हारी खोज में बढ़ना न आता।"

सरस्वती सीधी होकर स्वाभाविक रूप से बैठ गई। अपमान, लांछना, धिक्कार और अनाहार से जिसका शरीर और मन टूटा जाता था उसको बालगोविन्द के इन शब्दों से मानों सजीवन बूटी मिल गई। उसकी सारी थकावट, सारा दुःख मानों क्षण भर में दूर हो गया। सरस्वती को ऐसा जान पड़ा कि वह अपना पुराना अधिकार फिर पा गई। इसी से उसका पहला प्रश्न हुआ—"आगरे से आये हो? तो खाना-पीना नहीं हुआ?"

बालगोविन्द ने कहा—"वह सब पीछे होगा और तुम्हारा खाना-पीना हुआ है? शायद तुम्हारा भी नहीं हुआ है।"

सरस्वती चुप हो रही। दोनों कुछ देर चुप बैठे रहे। इसके बाद बालगोविन्द बिना पूछे अपने लम्बे वियोग का लम्बा इतिहास कहने लगा।

"तो तुम मुझ पर विश्वास करते हो?"

बालगोविन्द ने कहा—"निस्सन्देह।"

"पहले की तरह?"

"बेशक।"

सरस्वती उसके चरणों में गिरकर आँसू बहाने लगी। कुछ देर बाद अपने को सँभालकर आँखें पोंछते हुए उसने कहा—"मेरे लिए इतना ही काफ़ी है कि तुम अविश्वास नहीं करते। अब मर जाने पर भी मुझे दुःख न होगा।"

बालगोविन्द ने कहा—"ऐसी बात मत कहो। चलो, घर चलें।"

सरस्वती का कलेजा फिर दहल उठा। उसने कहा—"घर ? घर में क्या मैयाजी मुझे शरण देंगी ?"

"मुझे देंगी तो तुमको भी देना ही पड़ेगा। हाँ, मेरी माँ की बीमारी सुनकर, सुना है कि, तुम घर गई थीं। फिर क्या हुआ ?"

सरस्वती ने सिर्फ़ अपनी गर्दन हिलाई। उसकी आँखें फिर डबडबा गईं।

३

बिना अपराध के बार-बार डाँट-फटकार सहते-सहते धनराज का मन बहुत दिनों से बाग़ी होता जा रहा था। मगर आज पिता के किये हुए अपमान से उसके शरीर का सारा रक्त मानों विष हो गया। उसकी रगें बिजली-भरे तार की तरह उसको अदृश्य व्यथा से पीड़ित करने लगीं। पुराने संस्कार के कारण वह पिता की बात का कोई जवाब न दे सका। ओठ पर ओठ दबाये, काँपते हुए, वह बाहर निकल आया। अब तक उसने सब अन्याय, सब अपमान, बरदाश्त किया था मगर अब बरदाश्त न कर सका। उसके सारे रोष ने वज्र की तरह किसी पर गिरकर, किसी चीज़ को चूर-मूर, तहस-नहस करने के लिए उसे पागल बना दिया था। जब सबका क्रोध सरस्वती पर जा पड़ा है तब वह अपने को एक भद्दे और झूठे इलज़ाम से बचाने की बात न सोचकर आँधी की तरह वेग से चल पड़ा। उसे अचानक याद आ गया दमड़ी तिवारी। वह झूठा, वह शैतान ही तो सारे अनर्थ की जड़ है। धनराज उसको सीधा करने के लिए ग़ुस्से से ग़ुर्राता हुआ अपनी छावनी पर आया। वहाँ सुना कि दमड़ी अपने को बीमार बताकर, छुट्टी लेकर, घर चला गया है। धनराज और कुछ सुने बिना ही दमड़ी के घर की ओर रवाना हुआ। वहाँ पहुँचते ही आवाज़ लगा दी, तिवारी ! कुम्हड़े के पत्तों से ढँकी एक छोटी सी

खिड़की ज़रा खुलकर फिर बन्द हो गई। किसी ने कुछ जवाब नहीं दिया। परन्तु धनराज को खड़ाऊँ की आवाज़ सुनाई पड़ी। वह अच्छी तरह समझ गया कि दमड़ी घर में ही है। इससे उसने फिर पुकारा—"अजी तिवारी, घर में हो या जागते हुए सोते हो?" बहुत चिल्लाने पर एक नंग-धड़ंग लड़का अमावट का टुकड़ा चाटता हुआ बाहर निकल आया।

धनराज ने कहा—"अरे नँगवा! तेरा बाप कहाँ है?"

उसने अमावट की ओर जीभ लपकाते हुए धीरे धीरे कहा—"बाबू! ऐं बाबू! बाबू घर में—नहीं-नहीं बाहर गये हैं।"

"सूअर का बच्चा! झूठ बोलता है!" कहकर धनराज ने ज्योंही उसका कान पकड़ना चाहा त्योंही वह लड़का समूचे अमावट को एक साथ मुँह में ठूँसकर घर के अन्दर भाग गया और दरवाज़ा बन्द कर दिया।

धनराज ने दरवाज़े पर लात मारकर ज़ोर से कहा—"कितने दिन छिपा रहेगा?" फिर ग़ुर्राते हुए वह एक आम के पेड़ के नीचे जा बैठा।

इस तरह बैठे बहुत देर हो गई। पेड़ की छाया पूर्व की ओर चली गई। सूर्य डूब गया। धनराज ऊबकर उठा। वहाँ से जाते समय फिर दमड़ी के दरवाज़े पर लात मारी और फिर ज़ोर से आगे बढ़ा। तिमुहानी पर आने पर धनराज को ख़याल आया कि क्रोध घटने के साथ भूख की मात्रा बढ़ गई है। वह सोचने लगा कि सीधे स्टेशन का रास्ता पकड़ा जाय या बाज़ार से कुछ ख़रीदकर पहले पेट की आग बुझा ली जाय। वह मनी-बेग खोलकर देखने लगा कि किसी ने पीछे से पुकारा—"धनराज भैया!"

धनराज ने चौंककर देखा कि महादेव है।

"महादेव!"

"हाँ, धनराज भैया! बहन को ढूँढ़ रहा हूँ। तुमने उसको इधर तो नहीं देखा?"

"क्यों, क्या वह घर में नहीं है?"

महादेव ने उदास भाव से कहा—"नहीं, पिताजी ने उसको घर से निकाल दिया है। उन्होंने हममें से किसी को उसे ढूँढ़ने के लिए भी नहीं जाने दिया। जब वे घर से चले गये हैं तब मैं निकलने पाया हूँ। मगर उसको कहीं पा नहीं रहा हूँ। जाते समय पिताजी ने बहन को कहा था—'रसातल को चली जा।' बहन बड़ी अभिमानिनी है। उसने क्या सचमुच...।" महादेव आगे बोल नहीं सका। उसकी आँखें डबडबा आईं। उसने मुँह फेर लिया।

धनराज सड़क के बीच धूल में बैठ गया। वह सारी सुध-बुध भूल गया है। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। केवल उसकी टकटकी महादेव के चेहरे पर समवेदना का मरहम लगाने की विफल चेष्टा कर रही है।

कुछ देर चुप रहने के बाद महादेव ने अपने को कुछ सँभालकर कहा—"महल्ले में किसी आदमी के घर नहीं जायगी, इसी से किसी के घर में उसको नहीं ढूँढ़ा मगर पिछवाड़े का बग़ीचा, कुआँ, तालाब, जङ्गल सब देख आया और कहीं उसे नहीं पाया।"

धनराज ने कहा—"बिना अपराध के दण्ड देखो!" इतना कहने के बाद वह फिर विचार-तरङ्ग में डूब गया। कुछ देर बाद बोला—"स्टेशन की तरफ़ तो नहीं गई? चलो उधर ढूँढ़ें।

"स्टेशन की तरफ़ तो पिताजी अभी गये हैं। मैं उधर नहीं जाऊँगा। वे मुझे देखते ही झल्ला उठेंगे।"

धनराज ने पूछा—"स्टेशन पर क्यों गये हैं?"

"ठीक स्टेशन पर नहीं गये हैं। उसके पास ही कोई यजमान शायद मरण-तुल्य हो रहा है। उससे गोदान कराया जायगा। इसी लिए घरवाला उन्हें बुलवा ले गया है। मैं उधर नहीं जाऊँगा। तुम्हारा भी उधर जाना...।" इतना ही कहकर महादेव रुक गया।

धनराज ने भौंहें तानकर कहा—"मेरी फ़िक्र मत करो, तुम चलो। फिर वे वहाँ खड़े तो होंगे नहीं। तब तुम्हें डर क्या है?"

महादेव के दोनों पैर मानों ठिठकते हुए धनराज के पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाने पर उसने धनराज को सम्बोधन करके कहा—"धनराज भैया! तुमने शायद कुछ खाया-पिया नहीं!"

"नहीं, और तुमने! तुम लोगों ने खाया-पिया है!"

"नहीं। हममें से किसी ने नहीं खाया। बहन मुँह का कौर छोड़कर चली गई। माँ ने सारा भोजन गाय को डाल दिया।"

"राम-राम! मेरे लिए क्या चिन्ता है। तू लड़का है। दिन भर कुछ खाया नहीं। चल, बाज़ार से कुछ खाने की चीज़ ख़रीद लें। आज बाज़ार का दिन है। चीज़ें ताज़ी मिलेंगी।"

"और तुम!"

"पीछे देखा जायगा। स्टेशन से लौट आने पर।"

दोनों फिर चुपचाप चलने लगे।

दोनों ने चलते-चलते देखा कि एक जगह कुछ आदमी ताड़ी पीकर ढोल पीट रहे हैं। उनमें से एक धोती को साड़ी की तरह पहनकर मूँछ-दाढ़ी पर घूँघट डाले, हाथ-पैर हिलाते हुए, गा रहा है—

"ग़म खाना भाई, कम खाना,
सरकारी हुकुम है ग़म खाना।"

पियक्कड़ों की भीड़ देखकर धनराज ने महादेव को उधर जाने से मना किया। ताड़ी की बदबू आने से दोनों थू-थू करते हुए आगे बढ़ गये।

गाँव में जगह-जगह कलेक्टर के स्वागत में ध्वजा-पताका लगी हुई है, कहीं फाटक सा भी बना हुआ है। धनराज का ध्यान उधर नहीं है। वह महादेव को कुछ खाने की ताज़ी चीज़ दिलाने के फेर में है।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर फिर भीड़ दिखाई पड़ी। यहाँ बहुत से आदमी जमा थे। इतनी भीड़ क्यों है, यह जानने के लिए बाल-बुद्धि महादेव भीड़ के अन्दर घुस गया। पीछे-पीछे धनराज भी गया। भीड़ ठेलकर ज़रा आगे बढ़ने पर उसने देखा—सिर पर पट्टी बाँधे एक औरत रो रही है और गाली-गलौज कर रही है।

"आओ जी महादेव ! क्या देखते हो !" कहकर धनराज महादेव को लेकर बाहर निकल ही रहा था कि इतने में सुना, पिये हुए की आवाज़ में, कोई कह रहा है—"ख़बरदार चौकीदार ! दुसाध होकर ब्राह्मण के बदन पर हाथ मत लगाना। कहे देता हूँ, छूना मत। ख़बरदार ! ब्राह्मण क्रोध करके शाप देगा तो तू अभी भस्म होकर नरक में चला जायगा ! नहीं जानता, शास्त्र में लिखा है—'ब्राह्मण से जनि बैर करो, इन ब्राह्मण से भगवानहु हारे' !"

धनराज ने सोचा—यह तो पहचानी हुई आवाज़ है। क्षण भर में ही उसने देखा कि वह आदमी और कोई नहीं, दमड़ी तिवारी है। दमड़ी की बात सुनकर ही जो औरत बैठी थी वह खड़ी हो गई और चिल्लाकर बोली—"उँह। बड़ा ब्राह्मण की पूँछ बना है। अपने को ब्राह्मण कहते इसे शर्म नहीं आती। दुर्वासा का नाती बनकर आया है। शाप दे देगा !"

"बाँधो चौकीदार ! बाँधो। बेचारी का ख़ून कर डाला है, जी।"

'ख़ून' सुनकर धनराज ने भीड़ के अन्दर शेर की तरह झपटकर दमड़ी की गर्दन पकड़ ली।

उसको धक्का देते हुए धनराज यह देखकर चौंक पड़ा कि यह आदमी तो बिलकुल बेदम का—हलका—है। इससे उसका क्रोध आधा घट गया। भीड़ के लोग बोल उठे—"छोटे बाबू हैं ! छोटे बाबू।"

चौकीदार को धमकाकर और दमड़ी को और एक धक्का देकर धनराज ने ज़ोर से कहा—"इस अधमरे आदमी को तुम लोग इतने आदमी पकड़ नहीं सकते हो ! लो, बाँधो।"

एक आदमी ने रस्सी ला दी। चौकीदार ने छोटे बाबू को देखकर हिम्मत करके दमड़ी को रस्सी से अच्छी तरह बाँध लिया।

धनराज दमड़ी को चौकीदार के हवाले करके महादेव से कुछ कहने के लिए पीछे फिरा तो दमड़ी भुनभुनाने लगा—"यह बाप का खदेड़ा हुआ बेटा, तीसमार ख़ाँ बना है।" यह बात धनराज के कानों

तक पहुँचने के पहले ही वह अधेड़ औरत हाथ जोड़कर धनराज से कहने लगी—"बचाइए बाबूजी! बचाइए। दोहाई आपकी। इस दाढ़ीजार ब्राह्मण ने मेरी बहन को मार डाला है। मेरा सिर फोड़ दिया है। यह देखिए। आप लोग मालिक हैं। आप लोगों की गुहार मचाती हूँ। देखिए और इंसाफ़ कीजिए।"

धनराज ने कहा—"ख़ून किया है, यह सुन चुका हूँ। तेरी बहन कौन है? लाश कहाँ है?"

"यहाँ घर में है। इस घर में आकर देखिए, क्या कर डाला है।"

धनराज ने स्त्री के पीछे-पीछे जाते हुए महादेव से कहा—"महादेव! लाश पुलिस में चालान कर देने से पहले ज़रा दौड़कर डाक्टर को तो बुला लाओ।"

महादेव भी यही चाहता था। वह लाश नहीं देखना चाहता था; क्योंकि वह भूत से बहुत डरता था। धनराज के कहने पर वह वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया।

घ

जो अधेड़ औरत लाश दिखाने के लिए धनराज को लिवा ले गई वह सोमरी की बहन मँगरी थी। सोमरी से फँसने के कारण ही दमड़ी तिवारी को शीतल पण्डित ने एक दिन जाति-च्युत करना चाहा था। शीतल पण्डित के शोर-ग़ुल मचाने के फल-स्वरूप दमड़ी तिवारी की रखनी, यानी सोमरी मल्लाहिन, ज़मींदार की डाँट खाकर गाँव के बाहर बाज़ार लगने की जगह पर जा बसने को लाचार हुई थी।

साथ-साथ सोमरी की बहन मँगरी की दूकान भी स्थान-परिवर्तन की सूचना दिये बिना ही गाँव के बाहर वहीं चली गई थी। इससे मँगरी को फ़ायदा ही हुआ। गाँव के तीन आदमी उसके बँधे ग्राहक

हो गये; इसके सिवा स्टेशन जाने के रास्ते पर होने से छोटे-बड़े सभी आदमी वहाँ पधारने लगे। आमदनी बढ़ गई। मगर एहसान लिया दमड़ी तिवारी ने। वह कहता कि मेरे ही कारण तो दूकान यहाँ आई। भोली-भाली मल्लाहिनें दमड़ी की बात का जवाब न देतीं, बल्कि यह बात सुनते-सुनते एक तरह से उनको विश्वास हो गया था कि तिवारी का कहना सच ही है। उसी के कारण तो यह सब हुआ; नहीं तो ऐसी जगह पर दूकान करने की बात किसके ध्यान में आती!

वह जगह दमड़ी तिवारी के लिए ज़रा दूर की होने पर भी उसका आना-जाना बन्द नहीं हुआ।

सोमरी दमड़ी तिवारी की बड़ी सेवा-टहल करती थी मगर इधर कुछ दिनों से उसका मन बदल गया था। वह अब पहले की तरह मन से तिवारी की ख़िदमत में हाज़िर न रहती। इसके लिए सोमरी को विशेष दोष नहीं दे सकते। कई महीने पहले सोमरी को अपनी कलकत्ते में रहनेवाली मरणासन्न मौसी का तार आने से उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए कलकत्ते जाना पड़ा था। मँगरी दूकान टूट जाने के डर से वहाँ नहीं गई। इससे छोटी होने पर भी सोमरी को ही, बड़ी बहन के मौजूद रहते भी, दमड़ी की सेवा छोड़कर मौसी की सेवा करने के लिए जाना पड़ा।

वहाँ मौसी के गंगालाभ करने पर वारिस होने से सोमरी उसकी सोने की हँसली, सोने की टीक, सोने का हार, चाँदी का हुमेल, चाँदी का ठोस कड़ा, छः-सात गिनी और डेढ़-दो सौ रुपये नक़द पा गई जिसे लेकर वह गाँव को लौटी।

लौटकर सोमरी ने जिस दिन दमड़ी तिवारी को अपना माल-ख़ज़ाना दिखाया उस दिन से दमड़ी इन सब चीज़ों को हथियाने के लिए चारा फेंकने लगा। बहुत कह-सुनकर सूद में लगाकर रुपया बढ़ा देने के नाम पर दमड़ी ने उसके ज़ेवर ले लिये और उनको बेचकर उस रुपये से अपने नाम कई बीघा ज़मीन रघुराजसिंह के एक क़र्ज़दार किसान से झाँसा-पट्टी देकर लिखवा ली। मगर सोमरी को इन सब बातों की ज़रा भी

जानकारी न होने दी। वह जब सूद के लिए तक़ाज़ा करती तब दमड़ी यह कहकर उसे ढाढ़स दे देता कि सूद का सूद अदा करा दूँगा। मगर सिर्फ़ बातों का ही जमा ख़र्च।

इस मामले को निबटाने के लिए सोमरी और मँगरी में बहुत सलाह-मशविरा हुआ मगर चूहों के सलाह-मशविरे की तरह ही। दमड़ी से साफ़ जवाब लेने के लिए कई बार मनसूबा बाँधा गया मगर म्याऊँ के गले में घंटी कौन बाँधे! दमड़ी के मुँह कौन लगे! वह ज़मींदार का आदमी है, ज़मीन-सम्बन्धी क़ायदे-क़ानून से वाक़िफ़ है, क़लम के ज़ोर से स्याह को सफ़ेद कर सकता है। उसका पीछा करने से फ़ायदे के बदले नुक़सान होने का ही अधिक खटका है। यही सब बातें सोच-विचार कर दोनों बहनें चुप हो जातीं। इसके सिवा मँगरी कहती—"तुम्हें मानकर मौसी अपना सरबस दे गई मगर भाग्य में न रहने से कुछ भी नहीं टिकता। सब भाग्य का ही खेल है। मुझे कुछ नहीं दे गई तो भी दूकान की बदौलत रोज़ दूध-भात भगवान् जुटा ही देता है।"

इससे सोमरी और चिढ़ जाती, उससे व्यंग बिलकुल सहा न जाता। या तो दोनों में झगड़ा होने लगता या सोमरी मुँह फुलाकर अपनी कोठरी में चली जाती और किवाड़ बन्द करके पड़ रहती। आज भी बहन के साथ, दमड़ी से रुपये के लिए तक़ाज़ा करने की बात पर, कुछ झगड़ा हो गया। सोमरी ने अपनी कोठरी में जाकर ज्योंही दरवाज़ा बन्द किया त्योंही दमड़ी ने आकर किवाड़ खटखटाया।

सोमरी ने तुरत दरवाज़ा खोल दिया और मुँह फेरकर पान लगाने लगी।

दमड़ी जिस समय सोमरी के घर पहुँचा उस समय शाम हो गई थी। शीतल पण्डित के पिछवाड़े के बग़ीचे से लौट आने पर उसका मन कुछ उदास हो रहा था। उसने समझा था कि सरस्वती डूब मरी। यह उसके ख़ुश होने की बात थी; क्योंकि सरस्वती शीतल पण्डित की लड़की थी और शीतल ने उसको जातिच्युत करना चाहा था। सरस्वती की मृत्यु दमड़ी के

उस अपमान का बदला है। इससे दमड़ी को ख़ुशी ही हुई। बात ज़रा फीकी शायद इस कारण हो रही थी कि वह अपनी ख़ुशी ज़ाहिर करने के लिए दूसरा आदमी नहीं पा रहा था। वह बहुत पहले ही आकर सोमरी के सामने प्रसन्नता प्रकट करता मगर दरवाज़े पर रघुराजसिंह के ऊधमी लड़के ने धरना देकर नाहक़ देर कर दी। धनराज के टलते ही लोगों की आँख बचाकर दमड़ी सोमरी के घर पहुँचा और अन्दर घुसकर बोतलवासिनी की सेवा में लग गया।

तीन-चार चुक्कड़ ढालने पर भी जब नशा नहीं चढ़ा, दमड़ी सोमरी को एक पुरवा प्रसाद देकर आप गाँजा मलने लगा। सोमरी का मन दुखी था, उसने दमड़ी की ओर पीठ करके पुरवे का प्रसाद पनाले में ढाल दिया।

दमड़ी ने चिलम में गाँजा चढ़ाकर दो-तीन दम लगाये और फिर चिलम उलटकर ज़मीन पर रख दी। अब वह अपने आप हँसने लगा।

सोमरी ने उलटकर दमड़ी को एक बार सिर से पैर तक घूरकर देखा और बोली—"झूठमूठ की इतनी हँसी!"

दमड़ी ने आँखें मटकाकर और सारे शरीर को हिलाकर कहा—"ख़ुश होने पर हँसता हूँ, हँसते ही ख़ुश होता हूँ। हँसी-ख़ुशी भाई, हँसी-ख़ुशी।"

सोमरी ने कहा—"हँसी-ख़ुशी तो ख़ूब देख रही हूँ। अब यह बताओ कि रुपये का क्या हुआ।"

दमड़ी ने कहा—"अरे रुपया रुपया क्या करती है! तुझे ऐसी ख़बर सुना सकता हूँ जिसका दाम लाख रुपया है। सौ-दो सौ रुपया कौन चीज़ है! जानती है, आज क्या हुआ! नहीं जानती तो सुन। उस घमंडी बाही सितला की लड़की सरस्वती तालाब में डूब मरी। मैके-ससुरे कहीं शरण न मिली; न तो सास ने रक्खा न माँ-बाप ने। तब और कहाँ जाती! तालाब में डूबकर मर गई। मैं अपनी आँख से देख आया हूँ।"

यद्यपि दमड़ी ने सरस्वती को डूबते नहीं देखा तो भी उसने ज़ोर देकर कहा कि मैं अपनी आँख से देख आया हूँ। दमड़ी की तरह जो

पक्के चालबाज़ होते हैं उनको अपनी चालबाज़ी और अपनी अक़्ल पर बहुत विश्वास होता है और वे लोग अपने को एक तरह से दिव्य दृष्टि-वाला ही समझते हैं। अपने ऊपर अविश्वास करना इन लोगों की कुण्डली में लिखा ही नहीं रहता। इस विषय में दमड़ी शैतान का चाचा या मौसेरा भाई था। वह अपने मनगढ़न्त छल-कपट से कितनी ही बार सफल हो चुका था। इसी से उसने समझ लिया कि जो बात उसके मन की है वह होकर ही रहेगी। वह अपनी नज़र के सामने मानों यही देख रहा था कि सरस्वती मर गई, बेशक मर गई, पानी में डूबकर उतरा आई है। इसी से उसने कहा कि मैंने अपनी आँख से देखा है।

सोमरी ने अकचकाकर कहा—"ऐं! क्या कहते हो तिवारी! उस लड़की ने क्या जान दे दी!"

"हाँ, डूब मरी है, आत्म-हत्या कर ली है। डाइन बनेगी, चुड़ैल होगी। तू फिर रुपये के लिए तक़ाज़ा करेगी तो तेरा गला दबोच देगी। जानती है, ब्राह्मण की बात झूठ नहीं होती।"

सोमरी ने चटपट उठकर कहा—"गला तुम्हारा दबोचेगी कि मेरा! तुम्हीं ने तो ब्राह्मण की लड़की को नाहक़ बदनाम करके यह ख़ुराफ़ात मचवा दी। च-च-च! बेचारी बे-मौत मरी। स्त्री-हत्या, ब्रह्महत्या! राम-राम!"

दमड़ी ने तिरछी नज़र चलाकर कहा—"सोमरी! तू मतवाली हो गई है क्या!"

सोमरी झल्लाकर बोली—"मतवाले के मुँह में आग। तुम्हारी शराब इस पनाले में है; न पतियाओ तो सूँघकर देख लो। राम-राम! ऐसा अनर्थ भगवान् से सहा नहीं जायगा। हाय-हाय! पाप का ज़रा भी डर नहीं। ब्राह्मण-हत्या का ज़रा भी भय नहीं।"

दमड़ी की आवाज़ धीरे-धीरे लड़खड़ाने लगी थी। उसने अपनी लाल आँख को गुरेरकर व्यङ्ग स्वर से कहा—"ब्राह्मण! हूँ! बड़ा भारी ब्राह्मण। मेरे सामने और कौन ब्राह्मण है! पँचकौड़ी तिवारी के पोते, छकौड़ी तिवारी के बेटे, दमड़ी तिवारी को साला कहता था कि कुजात कर

देंगे ! प्रायश्चित्त का पैसा खानेवाले पुरोहित का इतना दिमाग़ ! मेरे सामने बभनई दिखावे ! अब सँभाले !"

सोमरी ने कहा—"रहने दो, डींग मारने की ज़रूरत नहीं। मैं तो सच्ची बात ही कहूँगी। किसी को तीत लगे या मीठ। सबसे बड़ा पापी वह है जो दग़ा देता है, विश्वासघात करता है। तुम ब्राह्मण बनते हो। तुमसे बढ़कर पापी कौन होगा। जिसने दीन-दुनिया की परवा न करके रात-दिन तुम्हारी सेवा भगवान् की तरह की उसी का सरबस सूद का लोभ दिखाकर तुमने हथिया लिया, ज़नाना ज़ात का रुपया हज़म कर लिया ! फिर एक भलेमानस की लड़की को झूठ-मूठ बदनाम करके उससे आत्म-हत्या करा दी ! तुम अपनी बभनई क्या बखानते हो ! तुम भी अपने को आदमी समझते हो ! तुमको तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए।"

दमड़ी ने कहा—"सोमरी ! मुझे क्रोध मत दिला। मैंने झूठ-मूठ बदनाम किया है ! मैंने अपनी आँख से देखा है।"

सोमरी ने कहा—"झूठ-मूठ तो बदनाम किया ही है। मौसी की बीमारी के समय तुमने प्रेम दरसाते हुए जो चिट्ठी मेरे पास भेजी थी उसमें क्या लिखा था, याद नहीं है ! झूठ-मूठ कलङ्क नहीं लगाया है ! झूठे नहीं हो !"

दमड़ी क्रोध से गिरगिट की तरह गर्दन ऊँची करके ग़ुर्राने लगा।

सोमरी ने कहा—"गिरगिट की तरह गर्दन क्यों उठा ली ! निगल जाओगे क्या ?"

दमड़ी जलते तेल का बैगन हो गया। उसने एक थप्पड़ मारकर गरजते हुए कहा—"हरामज़ादी, छोटे मुँह बड़ी बात ! मैं गिरगिट हूँ ! मल्लाहिन-सल्लाहिन कहीं की।'

"ख़बरदार बाभन ! निकल जा मेरे घर से। मेरे बदन पर हाथ लगानेवाला तू कौन ! सरबस हज़म करके अब मल्लाहिन-सल्लाहिन कहता है। देना न लेना, ऊपर से आँख दिखाना। निकल जा मेरे घर से।"

"देख सोमरी! तू बहुत शोख़ हो गई है। ज़मींदार ने घर-द्वार छीनकर गाँव से निकाल दिया था। मैंने तुझे यहाँ शरण दिलाई, तभी तू टिकने पाई है। अब मेरे ही ऊपर रोब गाँठती है। ठहर जा, मूँड़ मुँड़वाकर गधे पर चढ़ाकर यहाँ से न निकलवा दूँ तो दमड़ी तिवारी मेरा नाम नहीं। अभी जाकर ठाकुर (ज़मींदार) से कहता हूँ। 'तेरा मन बहुत बहक गया है।"

मूँड़-मुड़ाने और गधे पर चढ़ाने की बात पर सोमरी आग-बबूला हो गई। उसने कहा—"ठाकुर! जा ठाकुर के यहाँ। वहाँ मुझे भी जाना आता है। जाकर सब भण्डाफोड़ कर दूँगी। उनके लड़के को झूठमूठ बदनाम करके विरासत से अलग कराया है। सब कह दूँगी। अन्दर महल में जाकर ठकुराइन को बताऊँगी। तू मुझे नहीं पह-चानता?"

"जा-जा, रण्डी की बात पर कौन विश्वास करेगा! हैं-हैं-हैं, जाकर ज़रा मज़ा देख आ।"

सोमरी बोली—"विश्वास करेंगे कि नहीं, यह मैं समझ लूँगी। मैं तुम्हारी वह चिट्ठी लिये जाऊँगी। जाकर ठकुराइन को दूँगी। ठाकुर साहब वग़ैरह को दिखाऊँगी। मैंने वह चिट्ठी फेंक नहीं दी। कोई काग़ज़ मैंने फेंका नहीं है। सब रक्खा है। जानते हो कि नहीं?"

एकाएक नरम होकर दमड़ी ने कहा—"सोमरी! तू नाराज़ हो गई?"

सोमरी ने कहा—"रहने दो अपना दुलार-प्यार। मँगरी की बहन सोमरी तुम्हारे ज़बानी प्यार से अब धोखा खाने की नहीं।"

दमड़ी ने कहा—"वह चिट्ठी तूने कहाँ रक्खी है? देखूँ तो सही।"

"क्यों दिखाऊँ? नहीं दिखाऊँगी। तू क्या कर लेगा? मैं तेरा ज़हरीला दाँत तोड़ दूँगी। तूने मेरा इतना सोना हज़म कर लिया है, मेरा सरबस लूट लिया। सब कह दूँगी। बेईमान, ठग, धोखेबाज़!"

दमड़ी ने ग़ुस्से से गरजते हुए कहा—"नहीं देगी?"

सोमरी ने उसी सुर में कहा—"नहीं दूँगी।"

"नहीं देगी!"

"नहीं।"

"नहीं देगी!"

सोमरी ने तीन बार कहा—"नहीं, नहीं, नहीं।"

शराब और गाँजे के नशे से दमड़ी का दिमाग़ बेतरह बिगड़ रहा था। ऊपर से सोमरी की ये जली-कटी बातें सुनकर और नौकरी जाने के खटके से वह जल-भुनकर ख़ाक हो गया। चतुराई से चिट्ठी लेने का धैर्य उसे नहीं रहा। उसने सोमरी को उठाकर पटक दिया और दोनों हाथों से उसका गला पकड़कर दबाया। सोमरी की चिल्लाहट और फिर गों-गों आवाज़ सुनकर मँगरी जब दूकान से अन्दर दौड़ी आई तब सोमरी की बोली बन्द हो गई थी।

"छोड़ पापी! छोड़ पापी! ख़ून किया रे। दौड़ो-दौड़ो!" कहकर मँगरी जब चिल्लाने लगी तो दमड़ी ने सोमरी को छोड़कर मँगरी पर बोतल चलाई। बोतल मँगरी के सिर पर लगी। वह बाहर भागी। आकर चिल्लाने लगी। दमड़ी इस बीच में खिसक रहा था, मगर एक तो बाज़ार लगने का दिन था, दूसरे कलेक्टर की अवाई में जगह-जगह सजावट हो रही थी। इससे बहुत से आदमी शाम हो जाने पर भी हाकिम को देखने की लालसा से मौजूद थे। दो-चार चौकीदार भी पुलिस की ओर से इधर-उधर घूम रहे थे। इससे दमड़ी के मन की बात मन ही में रह गई। वह अपने को ज़मींदार का कर्मचारी बतलाकर भी छुटकारा न पा सका।

स

जिस गाड़ी से कलेक्टर के आने की बात थी उस गाड़ी से वे नहीं आये। रघुराजसिंह ने स्टेशन पर जाकर देखा कि कलेक्टर के बदले उनके नाम एक तार आया है। उसमें यही लिखा था कि अचानक तबीयत ख़राब हो जाने से साहब गाँव देखने नहीं आ सके, इसके लिए उनको अफ़सोस

है। मगर आशा है कि वे दो-चार दिन में अच्छे हो जायँगे और तब बरुना में पधारेंगे। सारी तैयारी व्यर्थ होने और दोहरा ख़र्च पड़ने की आशङ्का से रघुराजसिंह मन ही मन कुढ़े। वे हाथी को लौटा ले जाने का हुक्म देकर स्वयं टमटम हाँकते हुए गाँव की ओर रवाना हुए। कुछ आगे बढ़ने पर अचानक शीतल उपाध्याय को देखकर उन्होंने टमटम को रोका।

"पालागी पण्डित जी! इतनी रात को कहाँ?"

"पास के गाँव में एक ज़रूरी काम था। एक यजमान गोदान कराने के लिए लिवा आया था। जाकर सुना कि बीमार मर गया। इसी से लौटा आ रहा हूँ।"

रघुराजसिंह ने कहा—"आइए, इसी पर बैठ जाइए।"

उपाध्याय ज़रा नाहीं-नूहीं करके टमटम पर बैठ गये।

रघुराजसिंह ने घोड़े की लगाम ढीली की। कुछ आगे बढ़ने पर रोको, रोको की आवाज़ आई। उन्होंने फिर टमटम रोककर देखा कि डाक्टर की पालकी आ रही है। पालकी भी रुकी। डाक्टर नीचे उतरे। दुवा सलाम के बाद रघुराजसिंह ने पूछा—"डाक्टर साहब, रात को कहाँ चले?"

डाक्टर ने कहा—"सामनेवाले गाँव में एक रोगी को देखने जाता हूँ।"

रघुराजसिंह ने कहा—"अब कष्ट करके क्या कीजिएगा! वह रोगी तो ख़तम हो गया। उपाध्यायजी वहीं से आ रहे हैं।"

उपाध्यायजी ने कहा—"क्या महीपतिसिंह को देखने जा रहे थे?"

डाक्टर ने कहा—"हाँ।"

"वे तो ख़तम हो गये, अब जाकर क्या कीजिएगा!"

घर लौटें या महीपतिसिंह के घर तक जाकर मातमपुर्सी कर आवें! इस विचार में डाक्टर को एक-दो मिनट बीत गये। फिर उन्होंने कहा—"हाँ, कहना भूल ही गया था। आपका कर्मचारी बमकी

तिवारी बड़ी आफ़त में फँसा है। पुलिस ने उसे गिरफ़्तार कर लिया है।"

रघुराजसिंह ने आश्चर्य से कहा—"क्या हुआ! वह तो बीमारी के नाम से छुट्टी ले गया है। मेरा कर्मचारी पुलिस की गिरफ्तारी में कैसे!"

तब डाक्टर आदि से अन्त तक सब हाल बयान कर गये। उनके बयान का ख़ुलासा यह है—

महीपतिसिंह को देखने के लिए घर से निकलकर वे हाट लगने के स्थान के निकट पहुँच रहे थे कि उपाध्यायजी का लड़का महादेव उन्हें बीच रास्ते से पकड़कर एक ज़रूरी केस के नाम पर हाट में ले गया। वे भी ज़रूरी केस सुनकर, फ़ीस कौन देगा इसकी फ़िक्र छोड़कर, डाक्टर का कर्तव्य करने की इच्छा से चले गये। वहाँ वे जिसे देखने गये थे वह एक स्त्री थी। वह मरी ही जान पड़ती थी, मगर बहुत दवा-दर्पन करके होश में लाई गई।

एक दूसरी स्त्री ने, जो शायद उसकी बहन थी, कहा कि 'दमड़ी तिवारी ने शराब के नशे की झोंक में मेरे ऊपर बोतल फेंककर मेरा सिर फोड़ दिया है।' उसकी चोट वैसी सङ्गीन नहीं है। पहली औरत को उसी तरह नशे की झोंक में गला दबाकर मार डाला है, यह समझकर दूसरी औरत उसे पकड़ने गई थी। यही उसका अपराध था। डाक्टर ने दारोग़ा को ख़बर कर दी। दारोग़ा ने आकर दोनों औरतों का इज़हार लिख लिया है। डाक्टर साहब को इस वारदात की कुछ भी ख़बर न थी। इज़हार में जो सुना है वही कहा है। इसलिए उपाध्यायजी कुछ बुरा न मानें। इज़हार से ज़ाहिर हुआ है कि दमड़ी तिवारी से पहले औरत की आशनाई थी, यह बात धीरे-धीरे फैल जाने पर शायद उपाध्यायजी ने दमड़ी को जाति-च्युत करना चाहा था। दमड़ी को इसका दु:ख था। इसी से उपाध्यायजी की लड़की जब काशी में खो गई तब उपाध्यायजी से बैर साधने के लिए दमड़ी ने झूठी अफ़वाह उड़ा दी। आज शायद उसी बात पर उस

औरत और दमड़ी में कुछ कहा-सुनी हुई। औरत ने दमड़ी का भण्डा फोड़ देने की धमकी दी। इसी पर नशे की झोंक में ग़ुस्से से दमड़ी ने उसका गला धर दबाया। स्त्री ने कहा कि वह जब अपनी मौसी के यहाँ कलकत्ते गई थी तब शायद दमड़ी ने अपनी इस कारगुज़ारी की बात, अपनी शेख़ी जताने के लिए, उसको लिख भेजी थी। उसने उपाध्याय जी से बदला लेने के लिए जो विलक्षण युक्ति रची थी उसको उसने चिट्ठी में विस्तार के साथ लिखा था। उस चिट्ठी को वह फेंक ही देती मगर मौसी के ज़ेवर रखने के टीन के बक्स में नीचे जो काग़ज़ बिछा था उसके ज़ङ्ग से ख़राब हो जाने और पास में दूसरा काग़ज़ न रहने से उसने बक्स में नीचे दमड़ी की वह चिट्ठी बिछाकर उसके ऊपर गहने रख दिये थे। वह चिट्ठी भी मिल गई है।

डाक्टर साहब की रिपोर्ट समाप्त होने पर रघुराजसिंह ने कहा —"हरामज़ादे की इतनी हिम्मत! पानी में रहकर मगर से बैर! हमारा ही दिया अन्न खाता है और हमारे ही साथ ऐसी चालबाज़ी! उसको जेलख़ाने भेजकर छोड़ूँगा। ओह! इतना बड़ा शैतान है!"

शीतल पण्डित का चेहरा लाल हो गया, आँखों में आँसू आ गये। दुःख-सुख के खिंचाव में उनका चेहरा विलक्षण हो गया। उन्होंने भरी आवाज़ से सिर्फ़ इतना ही कहा—"दग़ाबाज़ कहीं का।" और कोई शब्द उनके मुँह से नहीं निकला। रघुराजसिंह ने डाक्टर को पीछे से आने के लिए कहकर टमटम आगे बढ़ाई।

६

सरस्वती और बालगोविन्द जब धीरे-धीरे घर की ओर बढ़ रहे थे उस समय बैलगाड़ी का धीरे-धीरे चलना उन्हें ज़रा भी नहीं अखरा। बैलगाड़ी के बदले अगर मोटर-गाड़ी होती तो सरस्वती को अपना हाल कहने और बालगोविन्द को सुनने का अवसर न मिलता। सरस्वती को बालगोविन्द

से बहुत बातें कहनी थीं। सरस्वती अपना हाल पूरा-पूरा बयान करने लगी। आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त सुनकर बालगोविन्द ने मन ही मन कहा "यह क़िस्सा तो पहले ही सुन चुका हूँ। यह तो शिवपूजन की दी हुई रिपोर्ट की हूबहू नक़ल है।"

मगर नक़ल होने पर भी शिवपूजन के दिये हुए विवरण से इस विवरण में अन्तर अवश्य था। एक ही चीज़ पुरुष के हाथ से अङ्कित होने पर जो रूप धारण करती है, वह स्त्री के हाथ से अङ्कित होने पर दूसरा रूप धारण कर लेती है। सरस्वती के विवरण की पंक्तियाँ टेढ़ो-मेढ़ो और आकार छोटे-बड़े थे। इस कच्चे हाथ के विवरण में चतुराई ज़रा भी नहीं थी, इससे शिवपूजन के वर्णन से सरस्वती का वर्णन बालगोविन्द को अधिक विश्वासदायक लगा। उसकी सचाई पर बालगोविन्द के चित्त में अब तनिक भी सन्देह नहीं रह गया। बालगोविन्द ने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि कोई कुछ भी सोचे, कुछ भी कहे, मैं सीता के वनवास की पुनरावृत्ति जीते जी नहीं करूँगा। बालगोविन्द के व्यवहार, बातचीत, रुख़ और ढङ्ग से सरस्वती समझ गई कि मुझे अपने पति का पूरा विश्वास फिर प्राप्त हो गया है। उस समय उसे ऐसा जान पड़ा कि वह उ ग्रहण-स्नान के दिन थकावट से जो सो गई थी सो अभी जागी है। इस बीच में जो-जो घटनाएँ हुईं उनके बारे में वह समझती है कि वह कुसपना था।

क्ष

यह तो हुआ उन दोनों के मन का हाल। परन्तु मनुष्य की देह नाम की भी एक चीज़ है जिसके दावे—सुख-दुःख—को किसी भी अवस्था में आदमी भुलवा नहीं सकता। यह एक दिन की घटना समझने पर पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि थकान ने बालगोविन्द और सरस्वती के शरीर को कितना त्रस्त कर दिया था और भूख उन्हें कितना कष्ट दे रही थी। गाड़ी मकान के जितना निकट पहुँचने लगी, वे दोनों भोजन और निद्रा के लिए उतना ही व्याकुल होने लगे।

मगर भोजन या नींद भगवान् ने उस दिन उनके भाग्य में नहीं लिखी थी। वे रात को घर ज़रूर पहुँच गये क्योंकि बैलगाड़ी में और चाहे जो दोष हो, एक बड़ा भारी गुण है। बैलगाड़ी से बैलगाड़ी की टक्कर कभी नहीं होती। अगर हो भी तो वह घटना वैसी सांघातिक नहीं होती। बालगोविन्द और सरस्वती को उस दिन अपने घर में शरण नहीं मिली।

बहुत वाद-विवाद के बाद यशोदा ने अपने लड़के से अन्तिम बात यह कही कि मैं सरस्वती का छुआ पानी हरगिज़ नहीं पीऊँगी और उसके साथ किसी हालत में न रहूँगी। इसलिए बालगोविन्द या तो अपनी स्त्री को घर से निकाल दे या अपनी माँ को।

सरस्वती का आचरण निष्कलंक है, इस बात पर यशोदा ने किसी तरह विश्वास नहीं किया। बालगोविन्द की बातें सुनकर उसके जी में यही धारणा हुई कि पतोहू ने मेरे पुत्र पर जादू कर दिया है। बालगोविन्द ने आरज़ू-मिन्नत करके, क्रोध दिखाकर, धमकी देकर भी जब देख लिया कि माताजी सरस्वती की निर्दोषिता पर किसी तरह विश्वास नहीं करेंगी तब उसके मुँह से अचानक यह बात निकल आई कि सरस्वती सती हो चाहे असती, मैं उसको किसी हालत में नहीं छोड़ूँगा।

यह सुनकर यशोदा को कुछ देर के लिए काठ मार गया। फिर उसने धीरे-धीरे कहा—"भगवान् ने अगर मेरे भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो ऐसा ही हो। मैं लड़के को छोड़ सकती हूँ, धर्म को नहीं छोड़ सकती।"

सरस्वती अभी तक कठपुतली की तरह एक तरफ़ खड़ी थी, एक बात भी नहीं बोली थी। जब उसके पिता ने उसको घर से निकाल दिया है तब उसकी सास नहीं रक्खेगी, इसमें आश्चर्य या दुःख की बात ही क्या थी। बालगोविन्द ने जब माता को प्रणाम करके उठकर कहा—"चलो सरस्वती हम लोग चलें", तब सरस्वती ने पूछा "कहाँ ?" उत्तर मिला—"देश छोड़कर।" सरस्वती ने कहा—"देश छोड़कर, समाज छोड़कर, मा को छोड़कर चलने के पहले अपने मन

को तौलकर देख लो कि जो काम करने जा रहे हो उसे अन्त तक निभा सकोगे कि नहीं।"

"मैंने निश्चय कर लिया है कि तुमको साथ लेकर इस गाँव से इसी घड़ी निकल चलूँ। पीछे जो होगा सो होगा। उसको सोचने-विचारने का अब समय नहीं है।"

अब बालगोविन्द ने अपने पुश्तैनी मकान की ओर पीठ की और सरस्वती का हाथ धरकर वह निरुद्देश्य भाव से चल पड़ा।

३

अपरिचित पथ का पथिक होना पुरुष के लिए स्वाभाविक हो सकता है मगर स्त्री के लिए नहीं। स्त्री अगर एक घर से निकलती है, तो दूसर घर में घुसने के लिए। इसी से सरस्वती ने बालगोविन्द की निरुद्देश यात्रा का एक लक्ष्य निर्धारित कर दिया। यह तय पाया कि दोनों आदमी बालगोविन्द की नौकरी की जगह कानपुर चलेंगे मगर काशी होकर। कानपुर दो दिन देर से पहुँचने पर भी कुछ हर्ज नहीं है; क्योंकि बालगोविन्द की छुट्टी अभी तक ख़तम नहीं हुई है। इसके सिवा सरस्वती जीती-जागती है और अपने पति के आश्रय में है, यह बात अपने माँ-बाप को जताये बिना जाना उसने उचित नहीं समझा। रास्ते में पति-पत्नी ने सलाह करके यह स्थिर किया कि काशी में धनराज से भेंट करके उसी की मार्फ़त यह सन्देश कहना भेजा जाय। धनराज को ढूँढ़ लेने में उन्हें कोई दिक्क़त न होगी। सरस्वती उसके मेस का पता जानती थी।

दोनों स्टेशन पर आकर रेल पर सवार हुए और सबेरे काशी पहुँच गये। फिर ताँगे से विश्वेश्वरगञ्ज, धनराज के मेस में दाख़िल हुए। ताँगे से उतरकर बालगोविन्द धनराज से मिलने गया था। मगर पाँच मिनट में लौटकर बोला कि धनराज अब इस मेस में नहीं रहता।

कुछ दिन हुए, उसके पिता यहाँ से उसका सब सामान उठवा ले गये हैं।

सरस्वती ने पूछा—"क्या मेस का कोई आदमी बता सकता है कि धनराज अब कहाँ रहता है?"

बालगोविन्द फिर जाकर धनराज के हाल-मुक़ाम का पता ले आया। सरस्वती ने महल्ले का नाम और मकान का नम्बर सुनकर कहा—"वह तो शिवपूजनसिंह का मकान है।" बालगोविन्द ने कहा—"चलो, वहीं चलें।" सरस्वती ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की। सच पूछिए तो सरस्वती ने जब काशी होकर कानपुर जाने का प्रस्ताव किया था तब उसके जी में आशा हुई थी कि काशी जाने पर शायद शिवपूजन से भी फिर एक बार भेट हो जाय।

३

शिवपूजन के स्थान पर पहुँचते ही बालगोविन्द की पहले जिससे भेट हुई वह था सरस्वती का भाई महादेव। सरस्वती ताँगे में बैठी है, यह बात बालगोविन्द के मुँह से सुनकर महादेव इतना अधीर हो गया कि दौड़ा हुआ बहन के पास जा पहुँचा और वहाँ जो कुछ कहने लगा उसको पागल के प्रलाप के सिवा और कुछ नहीं कह सकते; क्योंकि उन बातों में कोई सिलसिला नहीं था। उसकी असम्बद्ध बातों से बालगोविन्द और सरस्वती ने यही सारांश निकाला कि सारा सन्देह दूर हो गया है, दमड़ी तिवारी की चालबाज़ी पकड़ी गई है और गाँव में सरस्वती का कुछ पता न पाकर उपाध्यायजी, रघुराजसिंह, धनराज और महादेव कल रात को यहाँ आये हैं। निर्दोष सरस्वती हमारे ही दोष से रास्ते की भिखारिन हुई है, यह समझ में आते ही शीतल उपाध्याय और रघुराजसिंह दोनों एक साथ किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। कुछ भी स्थिर न कर पाने से वे महादेव और धनराज की सलाह पर चलने को तैयार हुए। ये दोनों उनको

लेकर यहाँ आये हैं। इन लोगों ने समझा था कि सरस्वती ने अगर आत्महत्या न की होगी तो वह शिवपूजन के यहाँ जायगी; क्योंकि शिवपूजन के सिवा और किसी के यहाँ उसको आश्रय मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। आदमी जब पानी में गिरकर डूबने का डर देखता है तब हाथ के पास जिसको पाता है उसी को पकड़कर बचने की चेष्टा करता है। इसके बाद महादेव ज़ोर से यह कहते हुए कि "बहन आ गई, बहन आ गई" सरस्वती का हाथ पकड़कर उसे शिवपूजन के उसी कमरे में ले गया जहाँ सब लोग गाल पर हाथ दिये बैठे थे।

हँसी और रुलाई के बीच सरस्वती से उसके बड़ों का मिलन हुआ। विधि की विडम्बना से एक उजड़ता हुआ परिवार फिर से दैव की कृपा से जैसा था वैसा ही बस गया। उस घर में जो जहाँ था वह वहीं बैठा रह गया। सिर्फ़ बाहर रह गया एकमात्र शिवपूजन। इस मिलनोत्सव के क्षेत्र से शिवपूजन जो खिसक गया था उस ओर देर तक किसी ने ध्यान नहीं दिया था। अन्त में रघुराजसिंह ने धनराज से शिवपूजन को बुलवाया। आने पर उसको सम्बोधन करके रघुराजसिंह ने शिष्टाचार के साथ कहा—"देखिए शिवपूजनसिंहजी! इस विडम्बना के लिए हम 'ओल्ड फ़ूल' (पुराने दक़ियानूस) ही पूर्ण रूप से ज़िम्मेदार हैं।"

शिवपूजन ने हँसकर उत्तर दिया—"आप लोगों से शायद अधिक ज़िम्मेदार हैं हम 'यंग फ़ूल' (नौजवान बेवक़ूफ़) लोग। मैं अगर सरस्वती को अपने घर पर न लाकर अस्पताल में पहुँचा देता तो यह फ़ज़ीहत होने ही न पाती।"

यह बात इतनी सत्य थी कि किसी ने उसको काटा नहीं। शिवपूजन को सकुचाकर चुप्पी साधे देख धनराज ने कहा—"जो हो गया उसके लिए तुम भी ज़िम्मेदार नहीं हो और मैं भी ज़िम्मेदार नहीं हूँ। ज़िम्मेदार है हम लोगों का अभागा समाज।"

बालगोविन्द ने कहा—"दोष समाज का नहीं है। दोष है हम लोगों के स्वभाव का। हम लोग जवानी से डरते हैं और स्त्रियों पर विश्वास नहीं करते।"

बालगोविन्द की यह बात सुनकर बूढ़ों ने क्या सोचा इसका कुछ भी आभास उन्होंने नहीं दिया। इस चर्चा को पलट देने के लिए रघुराज-सिंह ने बालगोविन्द से पूछा—'मेहमानजी, अब आपने क्या करने की सोची है ?"

बालगोविन्द ने कहा—"आज रात को ही कानपुर के लिए रवाना हो जाऊँगा।"

"यह सुसंवाद अपनी माँ को नहीं दीजिएगा ?"

"आप लोग दे दीजिएगा। मेरे कहने पर उसको विश्वास न होगा।"

"सरस्वती अपनी माँ से भेंट नहीं करेगी ?"

सरस्वती ने कहा—"इस समय नहीं। मैं इस समय गाँव पर नहीं जा सकती। मेरा शरीर और मन इतना थक गया है कि मैं अब कुछ दिन विश्राम चाहती हूँ। वह विश्राम मुझे गाँव पर नहीं मिलेगा।"

यह बात सरस्वती के बुज़ुर्गों को कुछ खली मगर उन लोगों ने सरस्वती के साथ जो व्यवहार किया है उसके बाद उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे ज़बरन् कुछ कराने का अधिकार वे लोग खो चुके हैं—इस बात का ज्ञान उन्हें हो गया था। इसी से वे लोग सरस्वती की बात का कुछ जवाब न देकर गम्भीर हो गये।

इस सन्नाटे में सभी लोग कुछ अकुलाने लगे।

कुछ देर बाद उपाध्यायजी ने कहा—"अच्छा तो सरस्वती दो दिन यहीं ठहर जा। तेरी माँ को हम यहीं ले आते हैं। उससे मिल-भेंटकर कानपुर जाना।"

सरस्वती ने हँसकर कहा—"शिवपूजन बाबू के घर पर बहुत दिन रह चुकी हूँ। अब एक दिन भी रहना उचित नहीं है। सुना है कि धर्मशाला में भी अतिथि तीन रात से अधिक ठहरने नहीं पाता।"

जब सब लोग समझ गये कि सरस्वती को रोकने की चेष्टा व्यर्थ है तब सब ने उसकी बात मान ली। सिर्फ़ महादेव यह ज़िद कर बैठा कि मैं भी बहन के साथ कानपुर जाऊँगा। इस पर किसी को विशेष आपत्ति नहीं थी। अन्त में यह निश्चय हुआ कि बालगोविन्द, सरस्वती और महादेव को रेलगाड़ी पर चढ़ाकर शीतल उपाध्याय, रघुराजसिंह और धनराज घर लौट जायँगे।

शिवपूजन ने उस दिन मेहमानों के लिए भोजन की जो व्यवस्था की थी उसको विवाह का भोज कहने में भी अत्युक्ति नहीं है।

भोजन के बाद सरस्वती, शीतल उपाध्याय और रघुराजसिंह जाकर लेट रहे। शिवपूजन और बालगोविन्द चौसर खेलने बैठे और धनराज तथा महादेव उन लोगों का खेल देखने लगे। शिवपूजन ने बालगोविन्द से बाज़ी पर बाज़ी हारकर अन्त में यह कहकर खेल छोड़ दिया कि मेरे सिर में बड़ा दर्द है, इससे मैं मन लगाकर खेल नहीं रहा हूँ। अब सन्ध्या हो गई, देखकर बालगोविन्द ने शिवपूजनसिंह से बाँसुरी बजाने का अनुरोध किया। शिवपूजन यह अनुरोध पूरा करने को किसी तरह राज़ी न हुआ। वह जानता था कि आज उसकी बाँसुरी बजेगी नाक के सुर से और बाँसुरी के हर छेद से सिर्फ़ उसके आँसू टपकेंगे। आज अपनी दुर्बलता का परिचय देने का साहस शिवपूजन में नहीं था।

रात को दस बजे सभी लोग बनारस छावनी स्टेशन पर गये और वहाँ से पसिंजर द्वारा मोग़लसराय गये। वहाँ एक्सप्रेस में बालगोविन्द, सरस्वती और महादेव सवार होकर कानपुर की तरफ़ रवाना हुए। सबेरे की गाड़ी से शीतल पण्डित, रघुराजसिंह और धनराज अपने गाँव को गये। स्टेशन पर अकेले शिवपूजन रह गया; क्योंकि ख़ाली घर में लौटने की उसकी ज़रा भी इच्छा नहीं थी। अचानक शिवपूजन को सूझा कि इस पृथ्वी पर वह बिलकुल अकेले है। यह बात जी में आते ही उसे कुछ डर सा लगा। बाक़ी रात किसी तरह बिताकर वह सबेरे से ही अपनी मोटर में सवार होकर काशी शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक चक्कर

लगाने लगा। मानों वह अपने आपसे लगातार भागने की चेष्टा कर रहा है।

धीरे-धीरे उसको ज्ञात हुआ कि किसी काम में न लगने पर वह इस धरती पर झूठमूठ भटकता फिरेगा, इससे उसके चित्त की अशान्ति बढ़ेगी ही, घटेगी नहीं। मगर किस काम में लगे यह स्थिर न कर पाता था। रास्ते में एक जगह अचानक आवाज़ आई—

महात्मा गांधी की जय

उसने उलट कर देखा कि स्कूली लड़कों का एक बड़ा भारी जुलूस यह जयध्वनि करता हुआ क़तार बांधे सड़क से जा रहा है। यह जय-ध्वनि सुनते ही शिवपूजन मोटर में ही उछल पड़ा और बोल उठा "ईश्वर को धन्यवाद है, मुझे अपना काम मिल गया। मैं कल ही कालेज से नाम कटवाकर असहयोगी हो जाऊँगा।" कहने की ज़रूरत नहीं कि उसने ऐसा ही किया; क्योंकि किसी बात में अपनी इच्छा को दबाने का कष्ट शिवपूजन ने अब तक कभी स्वीकार नहीं किया था।

——